ISSN : 2231-0509
वर्ष 18/अंक 4/जुलाई-अगस्त, 2016

शिक्षा विमर्श

शैक्षिक चिंतन एवं संवाद की पत्रिका

राजस्थान की परिवर्तित पाठ्यपुस्तकें
एक विश्लेषण

टाटा एजुकेशन ट्रस्ट, मुम्बई के सहयोग से प्रकाशित

शिक्षा
विमर्श

शैक्षिक चिंतन एवं संवाद की पत्रिका
वर्ष 18/अंक 4/जुलाई-अगस्त, 2016

प्रधान संपादक रोहित धनकर
संपादक प्रमोद
प्रबंधक रीना दास
कला पक्ष रामकिशन अडिग
कम्प्यूटर/प्रसार प्रबंधन ख्यालीराम स्वामी

संपर्क
शिक्षा विमर्श
दिगन्तर, खो नागोरियान रोड,
जगतपुरा, जयपुर-302017 राजस्थान
फोन : (0141) 2750230, 2750310
मो. 9214181380 (प्रसार प्रबंधक)
ई मेलः shikshavimarsh@gmail.com
वेबसाइटः www.digantar.org

इस अंक का मूल्य : ₹80 व्यक्तिगत; ₹120 संस्थागत

सदस्यता राशि

	व्यक्तिगत	संस्थागत
वार्षिक	300	450
द्वि-वर्षीय	550	850
तीन-वर्षीय	750	1200
आजीवन	3000	4500

(ऑनलाईन राशि भेजने के लिए www.digantar.org देखें)

'शिक्षा विमर्श' के लिए सभी भुगतान 'दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति, जयपुर' (Digantar Shiksha Evam Khelkud Samiti, Jaipur) के नाम देय मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा किया जाए।

इस पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के हैं।
दिगन्तर की इन विचारों से सहमति हो यह जरूरी नहीं है।

अनुक्रम

संपादकीय 3
❑ प्रमोद

साक्षात्कार

राजस्थान की नई पाठ्यपुस्तकें: वैचारिक दबाव या हड़बड़ाहट 7
❑ अपूर्वानन्द से प्रमोद की बातचीत

हिन्दी

उसका नाम आज है: पहली कक्षा के बारे में कुछ नोट्स 14
❑ हिमांशु पण्ड्या

राजस्थान की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें
हठधर्मिता, पितृसत्ता व युद्धोन्मादी राष्ट्रवाद की पोषक 21
❑ देवयानी भारद्वाज

गणित

गणितीयकरण में नाकाम नई पाठ्यपुस्तकें 28
❑ रविकांत

सामाजिक विज्ञान (पर्यावरण अध्ययन समाहित)

सामाजिक विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तकें 38
❑ कुमकुम रॉय

धर्मनिरपेक्षता पर प्रहार करतीं पाठ्यपुस्तकें 44
❑ राजीव गुप्ता

विज्ञान (पर्यावरण अध्ययन समाहित)

नई पाठ्यपुस्तकें: विज्ञान को लेकर एक जड़ नजरिया 52
❑ सुशील जोशी

विज्ञान बनाम धर्मावरण व अज्ञान! 61
❑ दिलीप सिंह तंवर

पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तकें
राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के नजरिए से विश्लेषण 68
❑ अम्बिका नाग

अंग्रेजी

आलोचनात्मक चिंतन में नाकाम पाठ्यपुस्तकें 74
❑ निवेदिता विजय बेदादुर

पुरानी बीमारियों से ग्रसित पाठ्यपुस्तकें 81
❑ लतिका गुप्ता

इस अंक की चित्रकारः सुनीता

दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति, जयपुर के लिए सुश्री रीना दास
द्वारा भालोटिया प्रिन्टर्स, 1/398 पारीक कॉलेज रोड, जयपुर-302006 से मुद्रित
एवं दिगन्तर, खो नागोरियान रोड, जगतपुरा, जयपुर-302017 से प्रकाशित

संपादकीय

अक्सर सरकारें बदलने के साथ-साथ पाठ्यपुस्तकें बदलती हैं और शिक्षा के प्याले में फिर नया तूफान उठ खड़ा होता है। पाठ्यपुस्तकों का बदला जाना राजनीतिक दलों के लिए कितना महत्वपूर्ण होता है और उन्हें बदलने के परिणामस्वरूप उठने वाला विरोध कितना तीखा होता है इस बात की झलक राजस्थान के शिक्षामंत्री के निम्न दो बयानों से मिलती है-

''राजस्थान विधानसभा में राज्य के शिक्षा मंत्री वासुदेव देवनानी ने कहा कि पाठयक्रम में विशेष सुधार किया जाएगा और स्वतंत्रता सैनानियों की जीवनियों को शामिल किया जाएगा, ताकि प्रदेश में कोई कन्हैया पैदा नहीं हो।'' (एनडीटीवी, 18 मार्च, 2016)[1]

"The government and I have nothing to do with it. I am yet to see the new textbooks. The syllabus is created by autonomous body and government does not interfere in it at all." (''मेरा व सरकार का इससे कोई लेना-देना नहीं है। मैंने तो नई पाठ्यपुस्तकें अभी देखी भी नहीं हैं। स्लेबस स्वायत्त संस्था द्वारा विकसित किया जाता है तथा सरकार इसमें किसी तरह का कोई हस्तक्षेप नहीं करती है'') (इंडियन एक्सप्रेस ईपेपर, 7 मई, 2016)[2]

उक्त में से पहला वक्तव्य विधान सभा में दिया गया है और दूसरा प्रेस द्वारा राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों में हुए बदलावों के संदर्भ में पूछे गए सवाल के जवाब में दिया गया है। पहला वक्तव्य जिस काम की घोषणा है दूसरा उससे मिले परिणाम की जिम्मेदारी से पीछा छुड़ाने की कोशिश है। सवाल यह नहीं है कि पाठ्यपुस्तकों

में बदलाव क्यों हो गया? सवाल यह है कि आखिर पाठ्यपुस्तकों में होने वाले बदलाव को किस नज़र से देखा जाए और समझा जाए?

यूं तो पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों आदि में होने वाला बदलाव एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे एक समय अंतराल के साथ नियमित तौर पर होना होता है। चूंकि शिक्षा समवर्ती सूची में है अतः वह राज्य और केन्द्र दोनों का विषय है। इस दिशा में काम करने के लिए हमारे यहां राष्ट्रीय स्तर पर एनसीईआरटी (राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद्) है तो राज्यों में इसी तर्ज पर एससीईआरटी या एसआइईआरटी (राजस्थान के संदर्भ में) जैसी स्वायत्ता संस्थाएं स्थापित हैं। प्रक्रियागत स्तर पर हर पांच साल में यह बदलाव होने या बदलाव नहीं तो कम से कम मौजूद पाठ्यचर्या की, पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा किए जाने के प्रावधान हैं। इसमें यह मान्यता निहित है कि शिक्षा व शिक्षा में चलने वाली प्रक्रियाएं कोई स्थिर या जड़ चीज नहीं हैं। किन्तु समस्या यह है कि यह इतनी स्वायत्त व निरापद ढंग से चलने वाली प्रक्रिया न रहकर एक राजनीतिक प्रक्रिया में तब्दील हो जाती है। इसका ताजा उदाहरण राजस्थान की नई पाठ्यपस्तकें हैं। अभी दो साल भी नहीं हुए थे पिछली पाठ्यपुस्तकों को आए हुए कि इस साल से फिर पाठ्यपुस्तकों को बदल दिया गया है। ऐसे में पिछली पाठ्यपुस्तकों पर व्यय हुआ सार्वजनिक धन व संसाधन एक समयावधि तक उनका उपयोग किए जाने से पहले ही व्यर्थ चले गए।

एक सवाल जो मन में उठता है वह यह कि आखिर राजनीतिक दलों की पाठ्यपुस्तकों में इतनी दिलचस्पी का कारण क्या हो सकता है? इस संदर्भ में लगता है कुछ बातों पर विचार किया जाना जरूरी है। पहली, पाठ्पुस्तकों से उम्मीद क्या है? दूसरी, पाठ्यपुस्तकों का शिक्षा के उद्देश्यों के साथ किस प्रकार का रिश्ता है? तीसरी, पाठ्यपुस्तकों की हैसियत क्या है?

सबसे पहले पाठ्यपुस्तकों से उम्मीद क्या है? इस उम्मीद से ही पाठ्यपस्तकों और बच्चों का रिश्ता तय होता है। क्या हम उनसे उम्मीद करते हैं कि बच्चे उनसे सीखें? वे बच्चों को अपना ज्ञान खुद बनाने में मदद करें? या हमारी चाहना यह है कि बच्चे दी गई जानकारी या सूचना को रट लें और उसी आधार पर परीक्षा में एक सही व तय जवाब देकर पास हो जाएं? राजस्थान की यह किताबें पहली चाहत को किसी भी स्तर पर पूरी करती नजर नहीं आतीं (इस बात के ढेरों उदाहरण आगे के लेखों में मौजूद हैं)। वे दी गई जानकारी को रट लेने व उसी आधार पर एक सही व तय जवाब देने की उम्मीद से बनाई गई हैं। इस तरह की पाठ्यपुस्तकें बनाने का इतिहास हमारे यहां पुराना रहा है और इसका इससे कोई रिश्ता नहीं है कि सरकार किस दल की है। बल्कि इसका गहरा रिश्ता हमारे भीतर बैठी उस गैर-लोकतांत्रिक सोच से है जो मनुष्य के स्वायत्त होने से घबराती है। यह एक उच्च कुलीन मर्दवादी मानसिकता है जो विचार करने की, विश्लेषण करने की, राय बनाने की काबिलियत दूसरों में, खास तौर पर स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों व बच्चों में विकसित नहीं होने देना चाहती उसका ठेकेदार खुद को समझती है। यह किताबें इस बात का नमूना हैं कि वे बच्चों के विश्लेषण कर लेने, विचार कर लेने, अपनी खुद की राय बना लेने से किस कदर घबराती हैं। इसलिए वे कहीं भी यह मौका पाठ के भीतर या उस पर बने अभ्यासों में उन्हें नहीं देना चाहतीं। एक तरह से यह किताबें बच्चों के सामने एक ऐसी बंद गलि उपस्थित करती हैं जिसमें जाने व आने का सिर्फ और सिर्फ एक ही रास्ता है, जिसे पहले से बता दिया गया है। खबरदार जो अपने लिए कोई दूसरा रास्ता ढूंढ़ा तो! इसलिए क्या समझना और कैसे समझना है यह सब यहां पहले से तय है। ये किताबें नकली गौरव की उस बीमारी से ग्रसित हैं कि सारा ज्ञान हमारे यहां पहले ही खोज लिया गया था, दुनिया में आज जो कुछ भी है वह हमसे सीखा हुआ है। यह किताबें ज्ञान को एक पवित्र चीज मानती हैं जिसे सिर्फ ग्रहण किया जा सकता है जिस पर अपनी तरफ से किसी तरह का विचार नहीं किया जा सकता। इनमें मौजूद ज्ञान उसका विश्लेषण करने, उस पर विचार करने और अपनी राय उसके बारे में जाहिर करने से बेहद घबराता है। और जब किताबें इस तरह से बनाई जाती हैं तो मूल मुद्दा बच्चों के सीखने में मददगार सामग्री बनाने से हटकर इस पर आ जाता है कि कौनसी सामग्री जोड़ी जानी है और कौनसी सामग्री हटाई

जानी है। ऐसे में किताबें बच्चों के सीखने की एक शिक्षण सामग्री के बजाए राजनीतिक आग्रहों को थोपने का साधन बन जाती हैं। और ऐसी किताबों में यह किया जाना आसान है। इसीलिए ऐसी किताबें इसका शिकार सबसे पहले होती हैं। अगर किताबों को इस चाहत के साथ बनाया जाए कि बच्चे उनसे सीख सकें, उनकी सामग्री का विश्लेषण कर सकें, उस पर विचार कर सकें, उसके बारे में अपनी कोई राय बना उसे जाहिर कर सकें। तो उन्हें राजनीतिक आग्रहों को थोपने का साधन बनाया जाना इतना आसान नहीं रह जाएगा। क्योंकि वे किसी भी विचार, किसी भी आग्रह का विश्लेषण करने, उस पर विचार करने, उसके बारे में अपनी राय बनाने व उसे जाहिर करने के लिए प्रेरित करेंगीं। फिर इससे फर्क नहीं पड़ेगा कि किसका नाम कम लिया गया, किसका नहीं लिया गया और किसको शामिल कर लिया गया। क्योंकि उनमें से कोई भी इस प्रक्रिया से बच नहीं पाएगा। ऐसी पाठ्यपुस्तकें बनाने के लिए हमें कोई पद्धति व प्रक्रिया तय करनी पड़ेगी। तब कुछ भी मनचाहा, कहीं भी डाल देना इतना आसान नहीं रह जाएगा क्योंकि तब हमें यह विचार करना होगा कि किस स्तर पर किस तरह की सामग्री बच्चों के लिए ग्राह्य हो सकती है? हमें यह भी विचार करना होगा कि उपलब्ध ज्ञान का कितना व कौनसा अंश किस स्तर पर दिया जा सकता है और उससे पहले की तैयारी क्या होनी चाहिए? क्या सीखना कोई एक रेखीय प्रक्रिया है? और किस स्तर पर सीखने की किस तरह की प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए?

हम बच्चों और पाठ्यपुस्तकों के बीच किस तरह का रिश्ता देख रहे हैं इसका सीधा संबंध इस बात से भी है कि हम शिक्षा के उद्देश्यों को किस तरह परिभाषित करते हैं? हमारे जैसे लोकतांत्रिक समाज में एक रास्ता यह है कि शिक्षा के उद्देश्यों को हम संविधान में दर्ज बराबरी, न्याय, स्वतंत्रता जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में परिभाषित करें। इस रोशनी में देखें तो यह पाठ्यपुस्तकें घोर संविधान विरोधी हैं। इसे इस तरह समझा जा सकता है, किसी भी लोकतंत्र को बने रहने व आगे विकसित होते रहने के लिए स्वतंत्र चेता व विवेकशील नागरिकों की जरूरत होती है। किन्तु यह किताबें इनमें दर्ज ज्ञान पर बच्चों को सवाल उठाने, उसका विश्लेषण करके, विचार करके, अपना विवेक विकसित करने का मौका देने के बजाए उन्हें बने बनाए ज्ञान के ग्राहक के तौर पर देखती हैं और किताब में दर्ज ज्ञान की सत्ता को स्थापित करती हैं।

लोकतंत्र के लिए यह जरूरी होता है कि उसमें सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो किन्तु इन किताबों में हमारे देश में मौजूद विविधता की झलक नहीं के बराबर है। यह किताबें हिन्दू व्रत, त्यौहारों, मिथकों से भरी पड़ी हैं और ज्ञान की सत्ता स्थापित करती हुई उन्हें स्थापित करने की कोशिश करती हैं। उन पर किसी तरह का आलोचनात्मक चिंतन करने की जगह पाठ में और पाठ के बाद दिए गए सवालों में ना के बराबर है। इस तरह देखें तो यह किताबें सिर्फ और सिर्फ एक उच्च वर्णीय हिन्दू (वह भी मर्दवादी) विचार की बहुलता से बोझिल हैं। बच्चों, स्त्रियों, आदिवासियों, दलितों व अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व इनमें लगभग नहीं है और कहीं गलती से है भी तो वहां उसे सिर्फ उसी उच्च वर्णीय हिन्दू मानसिकता के साथ पेश किया गया है।

पाठ्यपुस्तकों की सामग्री व उन पर बने सवाल यह दर्शाते हैं कि इन्हें बनाते वक्त बच्चों की उम्र का उनके सीखने के साथ क्या रिश्ता है? भाषा का समझ के साथ क्या रिश्ता है? किसी खास विषय में ज्ञान-सृजन की प्रक्रिया क्या होती है और उसका उस विषय को सीखने के साथ किसी तरह का तालमेल होने की जरूरत होती है या नही? शिक्षा के उद्देश्यों का लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ क्या रिश्ता है? जैसी किन्हीं बातों का खयाल नहीं रखा गया है। यह बात यह स्थापित करती है कि इन्हें बनाते वक्त पाठ्यपुस्तकें बनाने की किसी तरह की पद्धति व प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। और यही वह बात है जो इनमें विषयवस्तु के स्तर पर जो मन आया डाल देना संभव बनाने के लिए जगह बनाती है। परिणामस्वरूप यह ज्ञान निर्माण में सहायक शिक्षण सामग्री बनने की बजाए अपने आग्रहों को थोपने का साधन बन जाती हैं। पाठ्यपुस्तक निमार्ण में उचित पद्धति व प्रक्रिया न अपनाना तथा उसे संस्थागत रूप न दे पाना ही वह वजह है कि पाठ्यपुस्तक निर्माण एक स्वायत्त चलने वाली प्रक्रिया के बजाए राजनैतिक आग्रहों को ढोने

के एक साधन में तब्दील हो जाता है। एनसीएफ 2005 के बनने और उसके बाद उस पर आधारित पाठ्यपुस्तकें बनने के दौरान पाठ्यपुस्तक निर्माण की पद्धति व प्रक्रिया को अपनाकर उसे संस्थागत रूप देने की कोशिश हुई थी और पहली बार हम उस रास्ते पर काफी आगे बढ़े थे किन्तु लगता है अब फिर हमने अपने लिए प्रतिगामी रास्ता चुन लिया है। और यह चुनाव अपने आप में हमारी इस मंशा पर सवाल खड़ा करता है कि हमारा लोकतंत्रिक मूल्यों व हमारे संविधान में दरअसल किसी तरह का भरोसा है! क्या हम चाहते हैं कि हमारे बच्चों में सवाल उठाने व असहमतियों के साथ रहने जैसे लोकतांत्रिक मूल्य विकसित हों? कहीं ऐसा तो नहीं कि भीतर से हम आज भी लोकतांत्रिक मूल्यों व संविधान के विरोधी हों और उनका जाप सिर्फ राजनीतिक कारणों से करते हों!

पाठ्यपुस्तक की हैसियत के बारे में जब हम विचार करने लगते हैं तो पाते हैं कि उसकी हैसियत आज भी हमारे स्कूलों में, खासकर सरकारी स्कूलों में, एक धर्मग्रन्थ से कम नहीं है और उनकी यह हैसियत अपने-आप नहीं बनी है। दूसरी किसी तरह की पाठ्यसामग्री व संदर्भ सामग्री से स्कूलों (खासकर सरकारी स्कूलों) को लगातार लम्बे समय से वंचित रखकर व शिक्षकों को केवल और केवल एक पाठ्यपुस्तक पर आश्रित रखकर इसे बाकायदा निर्मित किया गया है। आज भी ज्ञान के एक मात्र आधिकारित स्रोत के रूप में शिक्षक व बच्चे के पास वही होती है। हमने कभी अपने शिक्षकों को इतना समर्थ बनाने में निवेश नहीं किया कि वे शिक्षण में विविध संदर्भ सामग्री का उपयोग करने में समर्थ हो सकें। पाठ्यपुस्तक की इस हैसियत से हमारे राजनैतिक दल भली भांति वाकिफ हैं। यह स्थिति पाठ्यपुस्तकों का वर्चस्व कायम करती है। और इसी वजह से वह एक राजनैतिक हथियार बनने के लिए अभिशप्त हो जाती है। पाठ्यपुस्तकों की यह स्थिति पाठ्यपुस्तक निर्माण में उचित पद्धति व प्रक्रिया को ना अपनाने को उकसाती है। क्योंकि पाठ्यपुस्तकें अपने आग्रहों को लोगों के मन में बिठा कर सत्ता हासिल करने के ऐसे आसान साधन के तौर पर नज़र आने लगती हैं जिनकी पहुंच बहुत व्यापक है। यही वजह है कि पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में इससे फर्क नहीं पड़ता कि सत्ता में कौनसा दल है क्योंकि सभी दल उनका इस्तेमाल अपने आग्रह लोगों के मन में स्थापित करने वाले साधन के तौर पर कर रहे होते हैं।

अब समय आ गया है कि हम पाठ्यपुस्तक निर्माण की पद्धति व प्रक्रियाओं को संस्थागत रूप देने के लिए आवाज बुलन्द करें व एक मात्र पाठ्यपुस्तक के वर्चस्व वाली स्थिति से आगे बढ़ें। ◆

सूचनाः राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण संबंधी अन्य लेख निम्न लिंक पर पढ़े जा सकते हैंः https://kitabat20016.blogspot.in/?m=0

संदर्भ

1. http://khabar.ndtv.com/news/india/textbooks-will-be-changed-to-ensure-no-one-like-kanhaiya-born-rajasthan-minister-1288383

2. http://epaper.indianexpress.com/802451/Jaipur/08-May-2016#page/1/1

प्रमोद

राजस्थान की नई पाठ्यपुस्तकें

वैचारिक दबाव या हड़बड़ाहट?

अपूर्वानन्द से प्रमोद की बातचीत

अगर आपने यह सोच लिया है कि स्कूलों के माध्यम से अपनी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करेंगे क्योंकि वहां लोग आराम से उपलब्ध हैं। तो यह अपराध है। किताबें हों या स्कूल हों यह सब कर दाताओं के पैसे से चलते हैं। कर दाता हर समुदाय के हैं, हर जाति के हैं, हर धर्म के हैं तो आप मेरे पैसे से मेरे ही खिलाफ काम नहीं कर सकते।

प्रश्न : राजस्थान की नई पाठ्यपुस्तकें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के आधार पर बनी होने का दावा करती हैं इस बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के कुछ सिद्धांत हैं। पाठ्यचर्या कहती है कि पाठ्यपुस्तकों का एक तरह से विकेन्द्रीयकरण होना चाहिए। यानी वह उत्साहित करती है राज्यों को कि वह अपनी पाठ्यपुस्तकें तैयार करें। लेकिन जैसा मैंने शुरू में कहा कि पाठ्यचर्या के भी कुछ सिद्धांत हैं, जिनमें पाठ्यपुस्तकों को लेकर भी एक मान्यता निहित है। जैसे कि पाठ्यपुस्तकें किस प्रकार बनें। पाठ्यपुस्तकों की भूमिका क्या है? कक्षा में और पाठ्यपुस्तकों की योजना में क्या है? इन प्रश्नों पर विचार किए बिना सिर्फ जुबानी जमा-खर्च करना और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के प्रति सभ्य निवेदन करना, इसका कोई अर्थ नहीं है। तो हमें जो देखना चाहिए वह यह है कि राजस्थान की आज की जो स्कूली किताबें हैं वे क्या राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के इन सिद्धांतों का पालन करती है? क्या वे उसको समझ पाई हैं? ये दो प्रश्न हैं।

अब दो सिद्धांत क्या हैं? पाठ्यपुस्तक के बारे में समझ क्या है? पाठ्यपुस्तक के बारे में समझ यह है कि यह एक ऐसी सामग्री है जिसका इस्तेमाल अध्यापक और छात्र करते हैं। दूसरे यह कोई एकमात्र और आधिकारिक ज्ञान का स्रोत नहीं है। पाठ्यपुस्तकों को दूसरी पुस्तकों को कक्षा में प्रवेश

> *यशपाल समिति कहती है कि पढ़ाई चाहे पाठ्यपुस्तकों से हो या दूसरे माध्यम से हो वह ज्यादातर समझ में नहीं आती है। तो मामला सघनता का है। सघनता नकारात्मक है। पाठ्यपुस्तकें इस बेचैनी से भरी रहती हैं कि वो ज्यादा से ज्यादा जानकारी बच्चों को दे दें, अधुनातन जानकारी दे दें, आज तक की दे दें ताकि हमारे बच्चे पिछड़े हुए न रह जाएं, वगैरा, वगैरा।*

करने की जगह बनानी चाहिए। पाठ्यपुस्तकें किस सिद्धांत के आधार पर बनेंगी? उस सिद्धांत के आधार पर जिस आधार पर बाकी स्कूली कार्यक्रम हों। वह यह है कि जो स्कूली ज्ञान है वह जो बच्चे हैं उनकी जिन्दगी से उसका रिश्ता दिखना चाहिए। दूसरे पाठ्यपुस्तक इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि वह बहुत बोझिल न हो। यह यशपाल समिति 1992-93 की रिपोर्ट से समझ में आता है जिसमें उन्होंने बच्चे के बोझ की बात की थी। लेकिन बच्चे के बोझ को कुछ लोगों ने भौतिक बोझ से मिला दिया। मामला वो नहीं है यशपाल समिति यह कहती है कि जो पढ़ाई होती है वह चाहे पाठ्यपुस्तकों से हो या दूसरे माध्यम से हो वह ज्यादातर समझ में नहीं आती है। तो मामला सघनता का है। सघनता नकारात्मक है। पाठ्यपुस्तकें इस बेचैनी से भरी रहती हैं कि वो ज्यादा से ज्यादा जानकारी बच्चों को दे दें, अधुनातन जानकारी दे दें, आज तक की दे दें ताकि हमारे बच्चे पिछड़े हुए न रह जाएं, वगैरा, वगैरा। तो जानकारियों का बोझा बन जाती हैं पाठ्यपुस्तकें। एक जानकारी और दूसरी जानकारी के बीच में रिश्ता क्या है? जानकारी कहां व कैसे ज्ञान में तब्दील होती है? इनको लेकर कोई पूरी समझ पाठ्यपुस्तक बनाने वालों के पास हो यह दिखलाई नहीं पड़ता है। तो हमें दरअसल जो चीज देखनी चाहिए वो यह है कि राजस्थान की अभी की किताबें क्या वास्तव में 2005 की स्कूली राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सिद्धांतों को समझ पा रही हैं या सिर्फ चूंकि उन्हें मान्य माना जाता है तो उनके प्रति श्रद्धा निभाई जा रही है।

प्रश्न : वे सिद्धांत जिनकी आप बात कर रहे हैं, उन सिद्धांतों की रोशनी में अगर इन किताबों को देखें तो वे किस तरह की प्रतीत होती हैं? किस तरह की नजर आती हैं?

उत्तर : देखिए, इन किताबों को सरसरी तौर पर देखने से यह मालूम होता है और कुछ पाठों को गहराई से देखने से यह मालूम होता है कि एक तो यह नए सिरे से नहीं लिखी गई हैं। यानी अभी तक राजस्थान में जो किताबें चल रही थीं, 2015 तक, बल्कि अभी भी कक्षाओं में हैं; ये नई किताबें उन किताबों का प्रायः संपादित रूप है। कुछ जगह इन्होंने नई किताबें बनाई हैं लेकिन प्राय वो संपादित बहुत है। जो संपादन किया गया है उसमें दो तरह की बेचैनी दिखलाई पड़ती है। एक कि बच्चे को राष्ट्रवादी बनाया जाए, दूसरी चिन्ता इस राष्ट्रवाद से जुड़ी हुई है, वह यह है कि वह राष्ट्रवाद एक खास ढंग का राष्ट्रवाद है यानी हिन्दू राष्ट्रवाद। तो इन दो चिन्ताओं के दबाव में किताबों का संपादन किया गया है। जाहिर है कि ये राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सिद्धांत के अनुरूप नहीं है। क्योंकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या यह कहती है कि पाठ्यपुस्तकें किसी विचारधारा के प्रचार का माध्यम नहीं बननी चाहिए, वह कोई भी विचारधारा क्यों न हो। जबकि जो संपादन किया गया है वह दरअसल इसी चिन्ता से किया गया है कि पिछली पुस्तकें संभवतया प्रर्याप्त राष्ट्रवादी नहीं थीं और उसमें भी प्रर्याप्त हिन्दू राष्ट्रवादी नहीं थीं। तो इनका एक प्रकार से हिन्दूकरण जिस प्रकार भी किया जा सके करने की बेचैनी इनमें दिखलाई पड़ती है।

प्रश्न : संपादन की जो आप बात कर रहे है कि यह एक संपादित रूप है यह सभी विषयों के बारे में कहा जा सकता है या कुछ खास विषयों में ज्यादा उभर कर आता है?

उत्तर : देखिए, मैंने सभी विषयों की किताबें तो देखी नहीं हैं अभी, लेकिन जिन विषयों की किताबें देखी, जैसे समाजविज्ञान की पुस्तकें जिनमें सबसे ज्यादा इसकी गुंजाईश होती है। चूंकि इनके पास वक्त बहुत कम था नए सिरे से पाठ लिखने का, तो पुराने पाठों में जो किया जा सकता था वही किया। मसलन एक पाठ मैं देख रहा था जो बहुत दिलचस्प निकला, जिसमें भारत के बारे में बतलाया जा रहा है। भारत के बारे में बतलाते समय पुरानी किताबें बतलाती हैं कि भारत के पड़ोस में कौन-कौन से देश हैं या भारत किन से घिरा हुआ है भौगोलिक रूप से, उसका परिवेश क्या है? तो पुरानी किताब में पाकिस्तान का नाम है, नई किताब में वो वाक्य तो है लेकिन पाकिस्तान का

नाम हटा दिया गया है। तो पाकिस्तान चूंकि असुविधाजनक नाम है तो उसका नाम हटा दिया, लेकिन दिक्कत यह है कि दूसरी जगह आपको वो नाम दिख जाएगा। इसका मतलब यह हड़बड़ी इतनी ज्यादा है कि आपकी पूरी किताब में कोई विचारात्मक संगती भी नहीं है। जहां आपकी निगाह में पड़ गया वहां आपने हटा दिया, जहां निगाह से छूट गया क्योंकि बहुत जल्दी-जल्दी कर रहे हैं, वहां वो रह गया। तो एक प्रकार से भ्रम की स्थिति छात्र के मन में भी होगी। मतलब हिन्दुकुश कहां है। आप दूसरे इस तरह के पवर्त श्रृंखलाओं के बारे में या दरियाओं के बारे में आप बतला रहे हैं कि वो कहां हैं कि वो किस देश में है, लेकिन इसके बारे में नहीं बता रहे हैं तो पद्धति क्या है? इसको लेकर एक भ्रम बना रहेगा, अध्यापक में भी बना रहेगा और बच्चों में भी बना रहेगा।

प्रश्न : आपने इन पाठ्यपुस्तकों में एक मुद्दा राष्ट्रवाद को लेकर बताया है तो आपके हिसाब से दिक्कत राष्ट्रवाद में है या हिन्दू राष्ट्रवाद की धारणा में है?

उत्तर : नहीं, दोनों से ही है। देखिए, किसी भी किताब का मकसद या स्कूली शिक्षा का मकसद आपको राष्ट्रवादी बनाना नहीं है। यह बहुत स्थिर मान्यता है। स्कूली किताब या शिक्षा का मकसद आपको एक इंसानियत तरीके से जीने की सलाहियत देना है। काबिलियत देना है, राष्ट्रवादी बनाना नहीं है। तो पहली बात तो यह है। दूसरी, चूंकि जो सरकार है उसकी राष्ट्रवाद की परिभाषा ही हिन्दू राष्ट्रवादी है तो इसलिए राष्ट्रवादी बेचैनी हमेशा हिन्दू राष्ट्रवादी बेचैनी में तब्दील हो जाती है। मसलन आप जब खगोलशास्त्र भी पढ़ा रहे हैं और उसमें तारों का वर्णन कर रहे हैं तो आपने ध्रुव तारा बतलाया तो एक पूरी कहानी दी ध्रुव तारे की जिससे पता चले कि यह दरअसल एक हिन्दू मान्यता है। इस बात को क्यों भूल जाने के लिए वे हमें कह रहे हैं या वो भूल रहे हैं कि इन किताबों को सिर्फ हिन्दू बच्चे नहीं पढ़ रहे हैं। इन किताबों को मुसलमान बच्चे भी पढ़ रहे हैं, इसाई बच्चे भी पढ़ रहे हैं, आदिवासी बच्चे भी पढ़ रहे हैं। दूसरे धर्मों और विश्वासों के बच्चे भी पढ़ रहे हैं। तो आप अगर सिर्फ एक धर्म की कहानियों पर बल दे रहे हैं तो इससे यह मालूम होता है कि आप इसी को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं, बाकियों को नहीं मानते हैं। तो यह तो बहुत साफ है कि यह हिन्दूवादी दबाव इन किताबों पर काम करता है।

प्रश्न : क्या यह पुस्तकें ज्ञान निर्माण में बच्चे की भागीदारी को सुनिश्चित करती है? यानी बच्चे के जीवनानुभवों को शामिल करने की जगह बनाती हैं?

उत्तर : ऐसा लगता नहीं है। जैसा हमारे गणित के विशेषज्ञ (रविकांत का लेख पढ़ें) ने गणित की किताबों का विश्लेषण करके बतलाया कि उनमें बहुत कम जगह है बच्चों के लिए कुछ करने की। तो गणित उनकी समझ से निकले या उनकी समझ का हिस्सा बन सके इसका अवकाश यह किताबें नहीं देतीं। यह गणित की किताबों के विश्लेषण से पता चलता है। दूसरी किताबों (अन्य विषयों से संबंधित लेख पढ़ें) से भी ऐसा पता चलता है कि पाठ्यपुस्तक बनाने वालों को यह मालूम है कि जीवन कैसे जीया जाता है, जीवन कैसे जीया जाना चाहिए और दरअसल जो बच्चे इन किताबों को पढ़ेंगे या पढ़ेंगी, उनको यह बताने को व्यग्र हैं कि जीवन इस तरह से जीया जाना चाहिए। तो इन किताबों में कोई ऊपरी तरफ से धरातल पर खड़ा होकर बच्चों को यह बतला रहा है कि आप ऐसे जीएं या ऐसे रहें यह आदर्श है। जाहिर है कि बच्चों के लिए इनमें खुद सोचने, समझने, विचार करने की जगह नहीं है, इसलिए वे अपना ज्ञान निर्माण कर पाएंगे, इसकी गुंजाइश तो बहुत ही कम दिखलाई देती है।

इन किताबों में कोई ऊपरी तरफ से धरातल पर खड़ा होकर बच्चों को यह बतला रहा है कि आप ऐसे जीएं या ऐसे रहें यह आदर्श है। जाहिर है कि बच्चों के लिए इनमें खुद सोचने, समझने, विचार करने की जगह नहीं है, इसलिए वे अपना ज्ञान निर्माण कर पाएंगे, इसकी गुंजाइश तो बहुत ही कम दिखलाई देती है।

प्रश्न : एक सवाल यह है कि क्या ये किताबें सीखने में सामाजिक, सांस्कृतिक व भाषायी विविधता जो हमारे समाज में मौजूद है उनका उपयोग करती हुई दिखाई पड़ती हैं?

उत्तर : कतई नहीं, जबकि इसकी बहुत गुंजाइश है राजस्थान जैसी जगहों में जहां खड़ी बोली हिन्दी का इस्तेमाल किया जाता है, उसके अलावा स्थानीय भाषाई

विविधता बहुत ज्यादा है। उनका रचनात्मक उपयोग किया जा सकता था किताबों में। मसलन अगर तारों के ही अलग-अलग नाम हैं या जो विभिन्न जनजातियों के नाम हैं उन नामों का इस्तेमाल किया जा सकता था, लेकिन वह प्रयास भी नहीं दिखलाई पड़ता है। तो जो मानक हिन्दू नाम हैं, सभ्य सुसंस्कृत नाम हैं, बच्चों के भी वही नाम हैं। उसी तरह आप साहित्य की पुस्तक में, समाजविज्ञान की पुस्तक में अगर कहानियां ही लेनी है समझाने के लिए तो स्थानीय लोक कथाओं के खजाने से ली जा सकती थीं। लेकिन साहित्य की हर किताब में आपको यह दिखलाई पड़ेगा कि उन्होंने किया क्या है। एक अध्याय उन्होंने राजस्थानी का दे दिया, इस तरह उन्होंने कर्तव्यता का निर्वहन कर दिया स्थानीयता के प्रति। जबकि स्थानीयता एक दृष्टि है जिसको हर पाठ में ही रचा-बसा होना चाहिए या खासकर अभ्यास में उसका इस्तेमाल होना चाहिए। अगर हिन्दी की किताब है या समाजविज्ञान की किताब है या कोई और किताब है तो उसका इस्तेमाल हो सकता है। गणित में भी हो सकता है। क्योंकि नाप-जोख करने के स्थानीय तरीके मौजूद हैं उनके लिए अलग शब्द हैं उन सबका इस्तेमाल हो सकता है लेकिन उनका इस्तेमाल नहीं किया गया।

डिजाइन के प्रति कोई संवेदनशीलता इन पुस्तकों में नहीं है। तो कोई भी बच्चा इन किताबों को उठाकर रखने की चाहे ऐसा मुझे लगता नहीं है। किताबें उसे अपनी ओर खींचती नहीं है यह सबसे बड़ी बात है। बल्कि सबसे पहली बात यही है कि किताबें बच्चों की इज्जत नहीं कर रही हैं। उनको बढ़िया ढंग से डिजाइन नहीं किया गया है और बढ़िया ढंग से अच्छे कागज पर छापा नहीं गया है।

प्रश्न : पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न समुदायों और वर्गों के प्रतिनिधित्व की स्थिति के बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर : इस मामले में तो पाठ्यपुस्तकें पुरी तरीके से असफल दिखलाई पड़ती हैं। वे भूल गई हैं कि इस समाज में अलग-अलग धर्मों, अलग-अलग समुदायों, अलग-अलग जातियों-जनजातियों के लोग रहते हैं। इन किताबों को देखने से लगता है कि एक ही तरह के लोग यहां हैं वो जैसा मैंने कहा कि वो हिन्दू हैं तो जब अन्य धर्मों के, अन्य समुदायों के बच्चे इनको पढ़ेंगे उन्हें लगेगा कि वो किसी और की कहानी पढ़ रहे हैं। यहां तक कि जब इन किताबों को देख रहे थे तो इन किताबों में संवेदनशीलता इतनी भी नहीं है कि प्राय हिन्दू धर्म से जुड़ी हुई चीजों को हमारी और बाकी को उनकी या वे करके संबोधित कर रही हैं। तो ये किताबें खुद ही हम और वे का निर्माण का कर रही हैं जिसमें हम हिन्दू है और वे मुसलमान, ईसाई या कोई और हैं। तो हम में वो शामिल ही नहीं हैं।

प्रश्न : इन किताबों में जेण्डर की संवेदनशीलता के बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर : कुछ जबानी जमा-खर्च है। कि आपने चित्र बनाए जिसमें लड़का-लड़की दोनों एक साथ खड़े हैं। इसको जेण्डर के प्रति संवेदनशीलता नहीं कहते हैं। जेण्डर पुनः एक दृष्टि है जो आपके पाठ निर्माण में दिखलाई पड़नी चाहिए। तो वह नहीं के बराबर हैं। जैसा मैंने कहा कि यह बहुत ही सांकेतिक है कि आपने चित्र बनाया लड़का-लड़की दोनों बना दिए काम खत्म हो गया। जेण्डर के प्रति जो कर्तव्य था उसका निर्वाह हो गया। लेकिन जेण्डर तो ये है नहीं। तो उसकी सावधानी किताबों में दिखलाई नहीं पड़ती है।

प्रश्न : क्या ये पाठ्यपुस्तकें बच्चों को आलोचनात्मक चिंतन करने का अवसर मुहैया करवाती हैं? यानी कि क्या इनमें बच्चों को अपनी मान्यताओं को जांचने और उन पर सवाल उठाने के मौके हैं?

उत्तर : पहले हमने जो बातचीत की उसी से बहुत साफ है कि ऐसा नहीं है चूंकि बच्चों की खुद की ही पैठ इन किताबों में नहीं है, उनके लिए जगह ही नहीं बन पा रही है। वे सवाल करें इसका सवाल ही नहीं उठता। सवालों के उत्तर किताबें दे रही हैं और उनको मानने के लिए कह रही हैं तो फिर आलोचनात्मक चिन्तन का प्रश्न कहां उठता है। एक आदर्श देश है, आदर्श समाज है, आदर्श ढंग से रहने का तरीका मालूम है किताबों को तो फिर बच्चे सवाल कैसे कर सकते हैं। उन्हें सिर्फ मानना है, इसलिए आलोचनात्मकता के लिए तो कोई स्थान मुझे दिखलाई नहीं पड़ा।

प्रश्न : इस बातचीत से ऐसा लग रहा है कि जो हमारी सामाजिक विविधता है उसको जगह नहीं मिली किताबों में और एक खास संस्कृति का वर्चस्व इनमें बढ़ता हुआ दिख रहा है, क्या इससे आप इत्तेफाक रखते हैं?

उत्तर : हां, बिलकुल। मैंने कहा कि इन पाठ्यपुस्तकों संपादन ही इस बेचैनी से किया गया है या इस दबाव में किया गया है कि इनका हिन्दूकरण कैसे किया जा सकता है। क्योंकि ज्यादा वक्त नहीं था, इसलिए नए सिरे से पाठ नहीं लिखे गए और जो पाठ लिखे गए उनमें जहां-जहां जगह बनी वहां-वहां ये काम कर दिया गया। अब अगर आप अम्बेडकर पर पाठ को ही देखेंगे तो जो भी अम्बेडकर से परिचित है वो जानता है कि अम्बेडकर के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है मनुस्मृति का दहन। लेकिन वह पाठ इसकी चर्चा ही नहीं करता। यह बात सबको मालूम है जो अम्बेडकर को जानते हैं और ये बच्चे भी जब बड़े होकर जानेगें तो उनको मालूम होगा कि अम्बेडकर ने कहा था कि हिन्दू धर्म से छुटकारे के बिना उपाय नहीं है। बौद्ध धर्म उन्होंने स्वीकार किया था। लेकिन यह पाठ उसकी चर्चा नहीं करता है बल्कि वो यह कह रहा है कि वे हिन्दू धर्म के भीतर ही रहकर सब कुछ करना चाहते थे। तो जब वे बड़े होंगे उनके हाथ में अम्बेडकर से संबंधित दूसरी जानकारी आएगी तो उन्हें सदमा पहुंचेगा और उन्हें इसका भी बुरा लगेगा कि उनकी स्कूली किताबें छिपा रही थीं, वो कुछ बता नहीं रही थीं।

प्रश्न : इन पाठ्यपुस्तकों में चित्रों की स्थिति क्या है? उसके बारे में आप कुछ कहेंगे?

उत्तर : पाठ्यपुस्तकें सुरुचित होनी चाहिए। अच्छे ढंग से उनकी डिजाइन की जानी चाहिए, छपाई अच्छी होनी चाहिए, चित्र अच्छे बने होने चाहिए। लेकिन आप किताब उठाकर देख लें उनको पढ़ना मुश्किल है क्योंकि स्याही ही इतनी कम है। उसमें इतनी बचत की गई है या भ्रष्टाचार हुआ होगा जो भी हुआ या हड़बड़ी में छपी हैं कि उनको बच्चे पढ़ेगें कैसे उसको लेकर मुझे बहुत चिंता है। उनको पढ़ना बड़ा कठिन है, बहुत खराब ढंग से छपी हुई किताबे हैं। डिजाइन के बारे में तो आप बात ही नहीं कर सकते। डिजाइन के प्रति कोई संवेदनशीलता इन पुस्तकों में नहीं है। तो कोई भी बच्चा इन किताबों को उठाकर रखने की चाहे ऐसा मुझे लगता नहीं है। किताबें उसे अपनी ओर खींचती नहीं है यह सबसे बड़ी बात है। बल्कि सबसे पहली बात यही है कि किताबें बच्चों की इज्जत नहीं कर रही हैं। उनको बढ़िया ढंग से डिजाइन नहीं किया गया है और बढ़िया ढंग से अच्छे कागज पर छापा नहीं गया है।

प्रश्न : समाजविज्ञान की किताबों में एनसीईआरटी ने एक अच्छा प्रयोग पिछले समय किया था कि बीच-बीच में कार्टून डाले गए थे। चूंकि हमारे यहां कार्टून काफी राजनैतिक दृष्टि से बनाए जाते हैं। उस परम्परा को हम राजस्थान की पिछली किताबों में मौजूद देखते हैं इन नई किताबों में क्या स्थिति है?

उत्तर : उनको निकाल दिया गया है। मैंने देखा कि पिछली किताबों में कार्टून हैं और इन किताबों में से कार्टून को निकाल दिया गया है। यह समझ से बाहर है कि उन कार्टूनों को क्यों निकाल दिया गया या कार्टूनों को हल्का समझा गया। जहां ज्ञान चर्चा हो रही है वहां कार्टून जैसी चीज क्या काम कर रही है। तो एक जो उपकरण पिछली पाठ्यपुस्तकों के लेखकों ने निकाला था जिसमें छात्रों को ऐसा ना लगे कि ज्ञान समझने में इतनी भारी भरकम चीज होती है कि आप इस तक पहुंच नहीं सकते हैं। उस अवसर को गवां दिया है इन किताबों ने।

प्रश्न : राजस्थान की इन नई किताबों पर आपकी ओर से कोई और टिप्पणी जो बताना चाहें?

उत्तर : मुझे चिन्ता सिर्फ इस बात की है कि किसी भी विचारधारा की पार्टी सरकार में आए। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह एक खास समय में इस बात में सफल हुई है कि वह अपने विचारों के इर्द-गिर्द बहुमत को इकट्ठा कर सके इस वजह से वह सरकार में आई है। यानी चुनाव जिस वक्त हो रहे हैं उस वक्त कई कारणों से दूसरे विचारों के मुकाबले उसके विचारों को लोगों ने तरजीह दी है। लेकिन उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि दूसरे विचार समाज में मौजूद हैं, विद्यमान हैं और उसे अभी बहुमत मिला है और ये पांच साल के बाद बहुमत चला जा सकता है। तो वह प्रत्येक तबके की सरकार है। दल के रूप में

मैंने कहा कि इन पाठ्यपुस्तकों संपादन ही इस बेचैनी से किया गया है या इस दबाव में किया गया है कि इनका हिन्दूकरण कैसे किया जा सकता है। क्योंकि ज्यादा वक्त नहीं था, इसलिए नए सिरे से पाठ नहीं लिखे गए और जो पाठ लिखे गए उनमें जहां-जहां जगह बनी वहां-वहां ये काम कर दिया गया।

उसका विचार कुछ भी हो, जनादेश का अर्थ यह नहीं है कि उसे अपना विचार लादने की या हर तरफ से उस विचार को लागू करने का काम दिया गया है। लेकिन अगर आप इस भ्रम में पड़ जाएं और जनतांत्रिक सिद्धांत को भूल जाएं तब गलती होती है। चूंकि यह एक ऐसी पार्टी की सरकार है जिसका यह खयाल है कि यह देश ही गलत तरह से बना है। तो इस देश को दुरुस्त कर दिया जाना चाहिए, तो वह जनतंत्र को भी सिर्फ साधन के रूप में इस्तेमाल करती है। स्कूल एक ऐसी जगह है जहां समाज के हर तबके के बच्चे इकट्ठा होते हैं। तो किसी पार्टी को अलग से जोर लगाने की जरूरत नहीं है। पैसा खर्च नहीं करना है, अपने कार्यकर्ता नहीं लगाने हैं। अगर आपने यह सोच लिया है कि स्कूलों के माध्यम से अपनी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करेंगे क्योंकि वहां लोग आराम से उपलब्ध हैं। तो यह अपराध है। किताबें हों या स्कूल हों यह सब कर दाताओं के पैसे से चलते हैं। कर दाता हर समुदाय के हैं, हर जाति के हैं, हर धर्म के हैं तो आप मेरे पैसे से मेरे ही खिलाफ काम नहीं कर सकते।

प्रश्न : कितना समय गुजर गया हमारे यहां हम पुस्तक निर्माण की प्रक्रिया को संस्थागत जामा नहीं पहना पाए। पिछले समय 2005 में जब एनसीईआरटी में किताबें बनी थी तब कोशिश की गई थीं कि पुस्तक बनने की ये पूरी प्रक्रिया संस्थागत रूप ले पाए और उस दौर में हमने देखा भी आस-पास कई राज्यों में वो प्रक्रियाएं शुरू भी हुई। लेकिन आज फिर से ऐसा लगता है स्थिति प्रतिगामि हो गई है। इस संदर्भ में आपकी कोई टिप्पणी?

उत्तर : यह दुर्भाग्य की बात है कि पाठ्यपुस्तकें हमेशा चर्चा के केंद्र में रहती हैं। सबसे ज्यादा बहस उन्हीं पर होती है। अगर स्कूली शिक्षा की मीडिया में उपस्थिति को आप देख लें तो सबसे ज्यादा बहस इस पर होती है कि किताबें किस तरह की हैं। महाराणा प्रताप हैं या अकबर हैं। नेहरू हैं या नहीं हैं। लेकिन पाठ्यपुस्तक है क्या, पाठ्यपुस्तक बननी कैसे चाहिए इसको लेकर संस्थागत स्तर पर विचार-विमर्श का कोई अवसर हमारे यहां नहीं है। एनसीईआरटी ने 2005 के बाद एनसीईआरटी के भीतर ही एक विंग बनाने कोशिश की थी, लेकिन उसे भंग कर दिया गया। और अब कहीं ऐसा कोई संस्थानिक प्रयास है नहीं। इसके बारे में अवश्य हम सब लोगों को सोचना पड़ेगा कि अगर सरकारी नहीं तो सामाजिक तौर पर हमें यह पहल करनी पड़ेगी जिससे हम पाठ्यपुस्तकों से जुड़ी हुई स्मृतियों को भी एक साथ रखेंगे। वरना 2006 से 2009 के वर्ष तक राजस्थान में क्या हुआ था पाठ्यपुस्तकों को लेकर अब अगर उसकी जानकारी लेनी हो तो हमें कहां जाना चाहिए हमें नहीं मालूम। क्योंकि किसी एक जगह वे दस्तावेज मौजूद नहीं हैं। ◆

परिचयः अपूर्वानन्द दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर हैं, विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय हैं और साहित्यिक समालोचक हैं।

यदि स्वच्छता पर केन्द्रित कुल रचनाओं को जोड़ा जाए तो यह कहा जा सकता है कि ये पाठ्यपुस्तकें स्वच्छता अभियान से प्रेरित नहीं वरन आक्रान्त हैं। पहली से आठवीं तक की किताबों में बारह पाठ पूर्णतः और पांच पाठ अंशतः स्वच्छता की शिक्षा के लिए जोड़े गए हैं। ...जो सबसे गहरा और दूरगामी नुकसान है, वह यह कि यह किताब ठस और उबाऊ है। यह बच्चे की शुरुआती उमंगों पर तुषारापात कर सकती है और भाषा एवं रचनात्मकता से उसकी स्थाई दूरी बना सकती है।

उसका नाम आज है

पहली कक्षा के बारे में कुछ नोट्स

हिमांशु पण्ड्या

राजस्थान में नई पाठ्यपुस्तकें लागू हुई हैं। शोर है कि इनमें दक्षिणपंथी विचारधारा के अनुरूप लेखन के जरिए बालकों के मानस को प्रभावित करने का प्रयास किया गया है। पाठ्यपुस्तक निर्माताओं द्वारा यह दावा किया गया है और किताबों की भूमिका में भी लिखा है कि वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (रापारू) के निर्देशों के अनुसार ही बनाई गई हैं। यदि ऐसा है तो फिर दिक्कत क्या है? किताब में क्या जोड़ा-घटाया गया, इसको लेकर आरोप प्रत्यारोप जारी हैं, लेकिन क्या विचारधारा विशेष का हस्तक्षेप कुछ जोड़ने-घटाने तक ही सीमित होता है या किसी विचारधारा/दृष्टिकोण को पूरी किताब के निर्माण में तलाशा जा सकता है? किस उम्र से यह हस्तक्षेप लक्षित किया जा सकता है या यों कहें कि कोई मत किस उम्र के बच्चों को प्रभावित करने में रुचि ले सकता है? इस लेख में पहली कक्षा की हिन्दी की किताब का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है, हालांकि प्रकारान्तर से और कक्षाओं की किताबों का भी जिक्र है। इस चयन के दो कारण हैं। पहला, इतनी छोटी उम्र की किताब होने के कारण यह किताब प्रायः विमर्श-बहस से बाहर रहती है और दूसरा, मेरी राय में यह किताब बच्चे की जिंदगी में सबसे महत्वपूर्ण होती है क्योंकि भाषा-साहित्य और सर्जना से उसके औपचारिक रिश्ते की शुरुआत यहीं से होती है।

किताब के शीर्षक पर नजर डालें। एनसीईआरटी की किताब जो कुछ बरस राजस्थान में भी चली, उसका नाम था - 'रिमझिम'। इसके बाद दो वर्ष पूर्व आई किताब का नाम था 'रुनझुन'। इस बार की किताब का नाम तथ्यात्मक दृष्टि से एकदम दुरुस्त है 'हिंदी' (!)। अब पाठों की बात करें। 'रिमझिम' में कुल तेईस पाठ हैं जिनमें से पहले छह पाठ हैं - झूला, आम की कहानी, आम की टोकरी, पत्ते ही पत्ते, पकौड़ी, छुक-छुक गाड़ी। 'रुनझुन' में उन्नीस पाठ थे जिनमें से पहले छह थे - चक-चक चैया, रेल का खेल, तीन साथी, कल देखेंगे, दाल-बाटी-चूरमा, टिपिक पां फुर्र। अब वर्तमान पुस्तक की बात करें। इसके शीर्षक बड़े मजेदार हैं। अवश्य ही उनके रखे जाने का कोई वैज्ञानिक आधार होगा। शीर्षक हैं - घ र च ल, अ ब म न, ज ख आ ा, द त इ ि, क स ई ी, व ह ए े।

यदि इस लेख का पाठक वयस्क है तो उसे अपने बचपन में इसी तरह पढ़ाया गया अक्षर ज्ञान याद आएगा। पिछली शताब्दी में भाषा ज्ञान इसी तरह से होता था। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 ने इसे बदल दिया था और इसके पीछे ठोस भाषा वैज्ञानिक आधार था। पुराना दृष्टिकोण व्यवहारवादियों का था जो अक्षरों की मानक कोडिंग के बाद क्रमशः शब्दों और वाक्यों की तरफ बढ़ते थे। चॉम्स्की, पियाजे और व्योगोत्स्की जैसे चिंतकों ने इसे खारिज करते हुए कहा कि स्कूल में आया बच्चा 'खाली स्लेट' नहीं होता बल्कि वह अपने साथ सार्वभौम व्याकरण के रूप में बुनी हुई भाषा लेकर आता है। पियाजे का दृष्टिकोण यहां सर्वाधिक उल्लेखनीय है जिन्होंने संज्ञानात्मक ज्ञान के सिद्धांत के तहत यह कहा कि बच्चे को शब्द के भीतर अक्षर की अवस्थिति समझाकर उस अक्षर का ज्ञान ज्यादा बेहतर तरह से कराया जा सकता है

चित्र-1

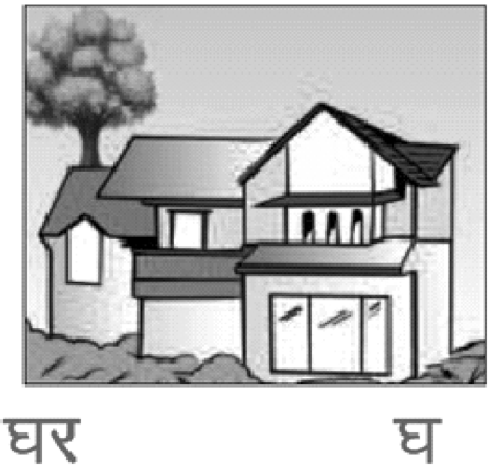

(जो दरअसल मौखिक ज्ञान के रूप में तो उसके पास पहले से होता ही है। देखें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का सहभागी आधार पत्र 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण', अध्याय 2)। यह बात सिर्फ भाषा की ही नहीं है बल्कि पूरी ज्ञान मीमांसा (epistemology) की है जिसमें बच्चा मूर्त उदाहरणों से अमूर्त सिद्धांत तक पहुंचता है। यह गणित या विज्ञान के बारे में भी उतना ही सही सिद्धांत है। यही कारण है कि 'रिमझिम' के पहले पाठ 'झूला' में 'झ ल ड' तीन अक्षर सिखाने का लक्ष्य निर्धारित था और 'रुनझुन' के पाठ 'चक चक चैया' में ट और र। (इसलिए यहां वर्णमाला क्रमानुसार नहीं है बल्कि पाठ में प्रयुक्त अक्षरों के मुताबिक है) नई किताब 'हिन्दी' शब्द, वाक्य या कथा संरचना से शब्दों तक नहीं पहुंचती और पुराना ठस, उबाऊ तरीका काम में लेते हुए - फलां चिन्ह का अर्थ फलां अक्षर होता है- वाली पुरानी डिकोडिंग पद्धति की ओर लौट जाती है। चलिए ठीक है, पर फिर पुरानी पद्धति को ही ठीक से अंगीकार करते हुए क्रमशः क ख ग घ क्यों न चला गया? ऊपर दिए गए क्रम की क्या तार्किकता है, यह चूं चूं का मुरब्बा क्यों है, यह समझ से परे है। ऐसा नहीं कि इस किताब में कविता, कहानियां नहीं हैं। हैं, पर वे सभी सहायक पठन सामग्री हैं, न तो उन पर सवाल हैं और न अंक विभाजन में उनका हिस्सा है। अब शिक्षक से लेकर विद्यार्थी तक सबके सामने स्पष्ट है कि पहली कक्षा की किताब सिर्फ वर्णमाला सिखाने के लिए है, भाषा की जीवन्तता से उसका कोई लेना देना नहीं है। यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सबसे मुख्य सिद्धांत 'रटंत से मुक्ति' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, 1.4, मार्गदर्शक सिद्धांत, पृ. 5) का खात्मा है।

पहले पाठ से शुरू करें। 'घर अपना है कितना सुन्दर/देखो उसको बाहर अन्दर'। इसके साथ दिए चित्र पर गौर करें। (देखें, चित्र-1; हिन्दी-1, पृ. 15) यह न किसी शैली की पेंटिंग है, न फोटो है, यह कम्प्यूटर ग्राफिक है। पूरी किताब में कम्प्यूटर ग्राफिक्स की भरमार है और वे सारे नीरस और मशीनी हैं जिनसे किसी तरह का कोई जुड़ाव संभव नहीं है। कुछ उदाहरण हैं- बतख, जग, दरवाजा, सड़क, ऊन, ढपली, झरना और सर्वाधिक हास्यास्पद है भवन। (देखें, चित्र-2; हिन्दी-1, पृ. 64)

दूसरे सबक के माध्यम से कुछ विस्तृत बातें की जा सकती हैं। र - 'रथ पर देखो हुए सवार/चले सैर को राजकुमार'।। (हिन्दी-1, पृ. 15) आज तो राजकुमार नहीं होते, बेशक वे एक ऐतिहासिक सच्चाई हैं लेकिन उन्हें वर्तमान काल में प्रस्तुत करना उस राज्य में स्वाभाविक ही है जहां जनता के चुने प्रतिनिधि अपने को 'महाराज/महारानी' कहलवाना पसंद करते हैं। मैं यहां एक साथ कुछ ऐसे उदाहरण रख रहा हूं जिन्हें देखकर आप समझ सकते हैं कि वर्णमाला ज्ञान के नाम पर दरअसल कौनसा आदर्श समाज बच्चों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। 1. य - यज्ञ ऋषि जी करते रहते/सदा भले की बातें करते।। (हिन्दी-1, पृ. 50), 2. ध - धनुष बाण से शोभा पाते/शूरवीर वो ही कहलाते।। (हिन्दी-1, पृ. 54), 3. औरत ममता की मूरत है/भोली भाली सूरत है।। (हिन्दी-1, पृ. 68), 4. ऋ - ऋषि हमेशा ज्ञान बताते/सच की राह पर कदम बढाते।। (हिन्दी-1, पृ. 80), 5. क्ष - क्षत्रिय युद्ध में जाते हैं/दुश्मन को मार भगाते हैं।। (हिन्दी-1, पृ. 80), 6. त्र - त्रिशूल होता बड़ा भयंकर/धारण करते हैं शिव शंकर।। (हिन्दी-1, पृ. 80), 7. ज्ञ - ज्ञानी देते सबको ज्ञान/इनका करते सब सम्मान।। (हिन्दी-1, पृ. 80) इनके साथ संलग्न चित्रों में से दो अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं। औरत और ज्ञानी (चित्र 3 व 4) - इन दोनों की प्रस्तुत छवि को भी देखें। औरत के नाम पर साड़ी का पल्लू सर पर

चित्र-2

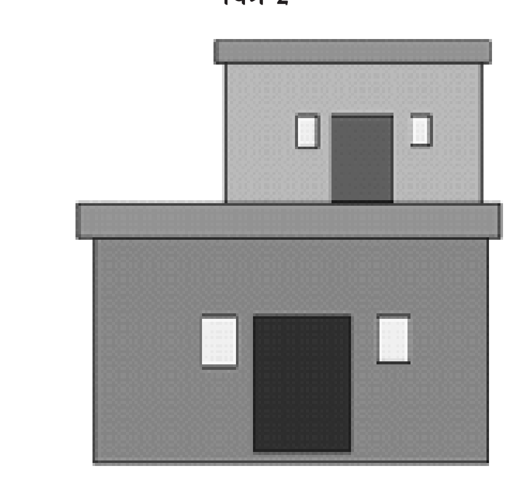

चित्र-3

औरत औ

लिए, बिंदी लगाए, गौरवर्ण स्त्री की छवि उकेरी गई है, उसे 'ममता की मूरत' पहले ही बता दिया गया है और 'भोली भाली सूरत' को उसकी अंतर्निहित विशेषता के रूप में रेखांकित कर दिया गया है। फेसबुक पर इस फोटो को लगाकर टिप्पणियां आमंत्रित की गईं तब अनेक पाठकों ने इस पर प्रतिक्रियाएं दीं, मैं इनमें से एक प्रतिक्रिया को प्रतिनिधि मानकर यहां रखता हूं। अंजलि काजल लिखती हैं, 'औरत अब ममता की मूरत से उभरना चाहती है, अपने साथ जुड़ी झूठी मूरतों को तोड़ना चाहती है। एक अदद इंसान को मिलने वाला सम्मान और स्वतंत्रता चाहती है। ममता की मूरतें देखकर बड़ी हुई हमारी पीढ़ी ने उस पीढ़ी को बहुत सहते हुए देखा है, अब नई पीढ़ी को नए अर्थ देने दीजिए। केवल ममता की मूरत बनके नहीं जीना है उसे।' यह आज की स्त्री की आवाज है। जैसाकि स्त्रीवादी चिंतक कविता कृष्णन ने लिखा कि 'औरत को अधिकार और आजादी से जोड़ने के बजाय ममता और भोला/भोलापन से जोड़ना गलत' है। शिक्षाशास्त्री रविकांत के मुताबिक यह मर्दवादी समाज को मुफीद होने वाली खासियतें हैं जो स्त्री पर चस्पा की जा रही हैं। दरअसल औरत को 'ममता की मूरत' (कोमल) और पुरुष को शौर्य का धनी बताना 'जेंडर स्टीरियोटाइपिंग' का सबसे मानक उदाहरण है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सहभागी आधार पत्र 'जेंडर इश्यूज इन एजुकेशन' में 'जेंडर एंड मैस्कुलैनिटी' (2.1, पृ. 23-26) में विस्तार से चर्चा करते हुए पाठ्यपुस्तक निर्माताओं को सावधान किया गया है। दूसरी तस्वीर में एक चोटीधारी व्यक्ति, छालपत्रों पर पुरानी कलम से कुछ लिख रहा है। कालखंड और व्यक्ति की जातिगत पहचान, दोनों को ही समझना मुश्किल नहीं है। इस प्रकार 'ज्ञान' के सार्वभौम आधुनिक अर्थ को उलटते हुए उसे अध्यात्मिक-सामुदायिक जातिगत स्वरूप प्रदान कर दिया गया है। संलग्न और ऊपर उद्धृत सभी पंक्तियां- एक भी पंक्ति भूतकाल में नहीं है। शूरवीर ***'वो ही'*** कहलाते हैं जो धनुष बाण धारण करते हैं, ऋषि ***'हमेशा'*** ज्ञान बताते हैं और क्षत्रिय आज भी युद्ध में जाकर ***'दुश्मन को'*** मार भगाते हैं। (बल मेरा)

मैं यहां 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986' का उल्लेख करना चाहूंगा। ध्यातव्य है कि 1976 तक शिक्षा एवं पाठ्यचर्या के सभी अधिकार राज्य सरकारों के पास थे। 1976 के संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में लाया गया और 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने राष्ट्रीय शिक्षा के मूल में एक सामान्य केंद्र (कॉमन कोर) और अन्य बातों में स्थानीय परिवेश के मुताबिक लचीलेपन की सिफारिश की। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा इसी परिप्रेक्ष्य में नियमित अंतराल पर होने वाली नियमित समीक्षा है। अतः इस कॉमन कोर का शिक्षा के लिए वही महत्व है जो भारतीय संविधान में प्रस्तावना का है। उद्धरण प्रस्तुत है, '' 'सामान्य केंद्र' में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, संवैधानिक जिम्मेदारियों तथा राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बंधित अनिवार्य तत्त्व शामिल होंगे। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयों में पिरोए जाएंगे। इनके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों को हर व्यक्ति की सोच और जिंदगी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जाएगी। इन मूल्यों में ये बातें शामिल हैंः हमारी समान सांस्कृतिक धरोहर, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री-पुरुषों के बीच समानता, पर्यावरण का संरक्षण, सामाजिक समता, सीमित परिवार का महत्व और वैज्ञानिक तरीके के अमल की जरूरत। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों के अनुरूप ही आयोजित हों। भारत ने विभिन्न देशों में शान्ति और आपसी भाईचारे के लिए सदा प्रयत्न किया है और 'वसुधैव कुटुम्बकम' के आदर्शों को संजोया है। इस परंपरा के अनुसार शिक्षा व्यवस्था का प्रयास यह होगा कि नई पीढी में विश्वव्यापी दृष्टिकोण सुदृढ़ हो तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्त्व की भावना बढ़े। शिक्षा के इस पहलू की उपेक्षा नहीं की जा सकती।''

चित्र-4

ज्ञानी ज्ञ

इस लम्बे और महत्वपूर्ण उद्धरण को यहां रखने का उद्देश्य यह है कि जिस राष्ट्रीय मूल्य और सांझी सांस्कृतिक धरोहर को सिंचित करने का लक्ष्य हमारी शिक्षा नीति ने रखा, यह किताबें उसके ठीक उलट एकाश्मी, स्तरीकृत और पोंगापंथी समाज और उससे बने मूल्य हमारे सामने रख रही हैं। पहली कक्षा में शुरू हुआ 'क्षत्रिय युद्ध में जाते हैं' का दर्शन सातवीं कक्षा में परिणति को प्राप्त करता है - ''लव कुश में क्षत्रिय के सभी गुण विद्यमान थे।'' (हिन्दी, कक्षा-7, पृ. 4) इस प्रकार जातिगत पूर्वाग्रह जो हमारे समाज में मिथक की हैसियत रखते हैं, पाठ्यपुस्तकें उनसे टकराने की जगह उन्हें पुष्ट करने लगती हैं। प्रकारांतर से किसी को उनकी जन्मना पहचान के आधार पर कंजूस या कामचोर या गन्दा या बहुत दूर तक जाएं तो कट्टर तक घोषित किया जा सकता है। जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में सबसे जोर देकर कहा गया है, ''वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएं दूर हों।'' राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 में भी इस बात को बहुत स्पष्टता से कहा गया है, ''भारत विविध संस्कृतियों वाला समाज है जो अनेक प्रादेशिक व स्थानीय संस्कृतियों से मिलकर बना है। लोगों के धार्मिक विश्वास, जीवन शैली और सामाजिक संबंधों की समझ एक दूसरे से बहुत अलग हैं। सभी समुदायों को सह-अस्तित्त्व व समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है और शिक्षा व्यवस्था को भी हमारे समाज में निहित इस सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप होना चाहिए।'' (1.4, पृष्ठ 8) अतः सरल शब्दों में कहा जाए तो शिक्षा में प्रतिनिधित्व का सवाल सामाजिक बराबरी का सवाल है।

किताब में सबसे पहले (पहले पाठ से भी पूर्व) दो पृष्ठ पर आठ कविताएं हैं। इनमें से तीन उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैः 1. आंख में अंजन/दांत में मंजन/नितकर, नितकर, नितकर/कान में तिनका/नाक में उंगली/मतकर, मतकर, मतकर। 2. कोमल-कोमल सुन्दर होंठ/लगने न दो इन पर चोट/अब आई मंजन की बारी/दांतों को न लगे बीमारी। 3. बात सुनना ध्यान लगाकर/भैया दोनों कान लगाकर/साफ सफाई इनकी कर लो/आदत अच्छी मन में धर लो। इसके बरअक्स 'रिमझिम' की पहली कविता 'झूला' के तीन हिस्से देखें : (अ) अम्मा आज लगा दे झूला/इस झूले पर मैं झूलूंगा/इस पर चढ़कर ऊपर बढ़कर/आसमान को मैं छू लूंगा। (ब) झूला झूल रही है डाली/झूल रहा है पत्ता पत्ता/इस झूले पर बड़ा मजा है/चल दिल्ली, ले चल कलकत्ता। (स) झूल रही नीचे की धरती/उड़ चल, उड़ चल/उड़ चल, उड़ चल/बरस रहा है रिमझिम रिमझिम/उड़कर मैं लूटूं दल-बादल। पहला उदाहरण आदेशात्मक स्वर का है जिसमें सुनाई पड़ रहा स्वर बड़े/अभिभावक/अध्यापक का है जबकि दूसरे उदाहरण में बच्चे का अपना स्वर है और भाव उमंग भरे हैं। विडम्बना यह है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ने जिस सबसे क्रांतिकारी बदलाव की सिफारिश की थी, वह यही था- बाल केन्द्रित शिक्षा। बाल केन्द्रित शिक्षा का अर्थ है बच्चे के स्वर, उनके अनुभवों और इस प्रकार उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना। शिक्षाशास्त्र में अब यह मुकम्मल रूप से स्थापित हो चुका है कि बच्चों को उपदेश की खुराक नहीं सहभागिता की चुनौती चाहिए। यदि शिक्षा का अर्थ सिर्फ दिए हुए ज्ञान को अकाट्य सत्य मानकर पुनरुत्पादित करना ही होता तो पिछली पीढी का ज्ञान अगली पीढी की सीमा बन जाता। सवाल करना, संशोधन करना, विस्तार करना, खारिज करना ज्ञान के परवर्ती विकास के चरण हैं। यह हर प्लेटो के लिए एक अरस्तू की तलाश है। शिक्षा का अर्थ सूचनाओं के भण्डार को रटकर उगलना नहीं होता, शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी की तर्कशक्ति, अवधारणा निर्माण और कल्पना शक्ति का विकास है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि प्रारम्भ से ही बच्चे की आवाज को जगह मिले और बच्चे को हौसला मिले कि नए गगन के नए सूर्य में 'मेरी भी आभा' है। जब इब्तिदा ही 'मतकर, मतकर' है तो आगे का हाल समझा जा सकता है, यह दृष्टिकोण आगे की सभी किताबों में समाया हुआ है। तीसरी कक्षा के पाठ 'शिष्टाचार' का नायक मगन 'कभी अपने माता-पिता की बात नहीं टालता।' और 'बड़ों की बात को कभी नहीं काटता।'।।'' (पृ. 9)। इस दृष्टिकोण की आलोचना राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में कुछ यों की गई है, ''हमारे स्कूल के शैक्षिक अभ्यास, सिखाने के कार्य और विद्यार्थियों के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तकें, उनके समाजीकरण और उनके सीखने में ग्रहणशीलता के गुण पर केन्द्रित होते हैं। जबकि हमें उनकी सक्रियता व रचनात्मक सामर्थ्य को पोषित और संवर्धित करना चाहिए- उनके दुनिया से वास्तविक तरीकों से संबंध बैठाने, दूसरों से जुड़ने की उनकी मूल अभिरुचि या अर्थ ढूंढने की जन्मजात रुचि, को पोषित करना चाहिए। सीखना अपने आपमें एक सक्रिय व सामाजिक गतिविधि है। प्रायः 'अच्छे विद्यार्थी' की जिस धारणा को प्रोत्साहित

किया जाता है उसमें अध्यापकों की आज्ञा का पालन, नैतिक चरित्र और अध्यापक के शब्दों को 'आधिकारिक ज्ञान' की तरह स्वीकारना शामिल है।'' (2.1, पृ. 15)

उपरोक्त कविताएं स्वच्छता की आदत बच्चों में विकसित करने के लिए जोड़ी गई हैं। यह राज्य द्वारा चलाए जा रहे स्वच्छता अभियान से प्रेरित हैं। यदि स्वच्छता पर केन्द्रित कुल रचनाओं को जोड़ा जाए तो यह कहा जा सकता है कि ये पाठ्यपुस्तकें स्वच्छता अभियान से प्रेरित नहीं वरन आक्रान्त हैं। पहली से आठवीं तक की किताबों में बारह पाठ पूर्णतः और पांच पाठ अंशतः स्वच्छता की शिक्षा के लिए जोड़े गए हैं। और वह तब, जब पर्यावरण अध्ययन की किताबें स्वच्छता के उपदेश से पहले ही भरी पड़ी हैं। यह आक्रान्तता, अध्येताओं के लिए हास्यास्पद और विद्यार्थियों के लिए त्रासद है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में समकालीन मुद्दों को जोड़ने के लिए नए विषय 'बना' दिए जाने की इस प्रवृत्ति पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा गया है, ''नए मुद्दों को विषयों की तरह जोड़ने से पाठ्यचर्या का बोझ और भी बढ़ता है और ज्ञान के अवांछनीय विखंडन को बढ़ावा मिलता है।'' (2.6, पृ. 34)। हुआ यही है, पाठ या तो विधिलिंग शैली में (आज्ञा या चाहिए अर्थ में) जोड़े गए हैं और जहां वे गल्प की शक्ल में आए हैं वहां भी उनका निस्तारण उपदेशपरकता में ही हुआ है। उदाहरण के लिए दूसरी कक्षा का पाठ 'बबलू बदल गया' का बबलू मां की डांट और गुरूजी के उपदेश मात्र से ही 'बदल जाता है।' (पृ. 81-83)। यहां शारीरिक चुनौती प्राप्त बच्चों या वंचित वर्गों/अस्मिताओं के प्रति इन किताबों का क्या रुख है, यह देखना भी दिलचस्प होगा। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के निर्देशों और जनाकांक्षाओं के दबाव के कारण अब पाठ्यपुस्तकों में इन विषयों पर पाठ होते हैं, यहां भी हैं, लेकिन देखना यह है कि उनकी दृष्टि क्या है। दूसरी कक्षा के पाठ 'सपना सच हो गया' में गुरूजी (अब तक आप यह समझ गए होंगे कि सभी किताबों के सभी पाठों में अध्यापक 'गुरूजी' हैं।) प्रभा के कृत्रिम टांग लगवाते हैं और फिर प्रभा बड़ी होकर डॉक्टर बनती है और 'अपने जैसे' लोगों के कृत्रिम टांग लगाकर 'समाज सेवा' करती है।' (पृ. 101-102)। इस तरह यह कहानी एक उपलब्धि की गाथा सुनाकर शारीरिक चुनौती प्राप्त अनेक बच्चों के मन में विकलांगता की रिक्ति को और गहरा करती है। कक्षा छह में पद्मा राव की एक अच्छी कहानी एक ऐसी ही बच्ची के दोस्तों के साथ संबंधों की कथा कहती है लेकिन पाठ्यपुस्तक निर्माताओं ने प्रश्न खंड में पूरे संदेश का गुड गोबर कर दिया है। लिखा है, ''हमारे आस पास या परिवार में ऐसे लोग होते हैं जो अपने दैनिक कार्यों को करने में असुविधा महसूस करते हैं। उन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता होती है। हमें कोशिश करनी चाहिए कि हम ऐसे व्यक्तियों की सहायता करें उन्हें उनकी निशक्तता का अहसास नहीं कराएं बल्कि उनके साथ मित्रवत तथा सम्मानपूर्वक व्यवहार करें।'' (पृ. 29)। दरअसल बहुत भली लग रही ये पंक्तियां उन बच्चों/व्यक्तियों - जिन्हें प्रकृति ने चुनौती दी है और वो इस चुनौती का सामना कर समाज में अपना वाजिब स्थान बना रहे हैं, उनकी इस क्षमता को रेखांकित करने की बजाय उनकी असहायता को दर्शा रही हैं और इस तरह उनके लिए 'दयाभाव' की सृष्टि कर रही हैं जो कतई अवांछित है। कक्षा सात का पाठ 'ये भी धरती के बेटे हैं' तस्कर, भिखारी, जेबकतरे के रूप में तीन बच्चों को दिखाता है जो अनाथ हैं और काम न मिलने के कारण 'भटक गए' हैं। फिर जिन पिता-पुत्र से उनका संवाद होता है, वे उन्हें अपने घर ले जाते हैं और काम देते हैं (पृ. 52-55)। इस पाठ के लेखक से पूछने की इच्छा होती है कि क्या जरूरी है कि हर कहानी का कोई 'समाधान' दिखाया ही जाए, और वो भी इतना सरलीकृत कि उसकी व्यर्थता सातवीं का बच्चा भी समझ लेगा। सातवीं कक्षा का ही पाठ 'भारत की मनस्विनी महिलाएं' किस तरह से स्त्री की द्वितीयक भूमिका को पुष्टपोषित करता है, इसे देवयानी भारद्वाज ने अपने लेख में सोदाहरण दिखाया है। इन सभी उदाहरणों के जरिए जो कहना है वह यह कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के निर्देश, समावेशी शिक्षा का पालन ये किताबें तकनीकी रूप से भले कर लें, पर यह समावेशी शिक्षा नहीं है क्योंकि यह व्यवहार में उन्हें और हाशिए पर धकेल रही है।

पुनः संदर्भित किताब पर लौटें। इसमें देशप्रेम की एक कविता है 'देश की सेवा'। कविता इस तरह से है - कौन करेगा देश की सेवा/हम भाई हम/कौन चलेगा सच्चा रास्ता/हम भाई हम/कौन बोलेगा मीठी भाषा/हम भाई हम/कौन बनेगा अच्छा बच्चा/हम भाई हम। इसमें लयबद्धता नहीं है तो उसका तो गम नहीं है, वह तो देशभक्ति पर कुर्बान हो ही

सकती है और 'अच्छा बच्चा' एक भविष्यत काल का लक्ष्य बताकर देशसेवा को उसकी प्राथमिक कसौटी बता दिया गया है तो उसकी भी उपेक्षा की जा सकती है क्योंकि हमें देशसेवा से लेखक की मुराद फिलहाल मालूम नहीं है। मैं इसके साथ संलग्न दोनों चित्र आपको दिखाना चाहता हूं। उससे देशसेवा का थोडा अर्थ खुल सकता है। (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 72) पहला चित्र (चित्र-5) शीर्षक के साथ है 'जय जवान जय किसान'। शीर्षक के अनुरूप इसमें दोनों दिख रहे हैं पर तस्वीर में सैनिक की केन्द्रीय स्थिति लग रही है और बच्चे, शिक्षक और किसान तीनों उसका अभिवादन करते दिख रहे हैं। दूसरा चित्र (चित्र-6) मंतव्य को अधिक स्पष्ट करता है। उसमें कुछ बच्चे सैनिक की वेशभूषा में परेड करते दिख रहे हैं। सभी बच्चे लड़के हैं। (यहां प्रसंगांतर होगा पर बताना जरूरी है कि आठवीं कक्षा की किताब में, पृष्ठ 95 पर स्वच्छता की प्रतिज्ञा लेते बच्चों की तस्वीर छपी है और संयोग है कि उसमें सभी लडकियां हैं, कुछ के हाथ में झाड़ू भी है।) बेशक सेना पर सारे देशवासियों को गर्व होना चाहिए लेकिन पहली कक्षा के बच्चों को देशप्रेम/देशसेवा का अर्थ सैनिक बनने से जोड़कर दिखाना यह दिखाता है कि इसके संकलक-निर्माता सैन्य राष्ट्रवाद से ग्रस्त हैं। बहुत संभव है कि अब तक इस लेख से सहमत होता आ रहा पाठक भी यहां कहे कि मैं अतिवाद से ग्रस्त हूं क्योंकि आज यह कहना कि सीमाओं की रक्षा करने और सैनिकों की जय जयकार करने के अलावा भी देशप्रेम के अनेक रूप हैं, यह कहना भी आज देशद्रोह की श्रेणी में आ सकता है। लेकिन सच यही है कि सीमाओं पर तनाव स्थाई सत्य नहीं है और देश का बहुलांश जो सेना में नहीं है, उसका देशप्रेम संदिग्ध या कम नहीं है। इससे भी ज्यादा प्रासंगिक यह है कि बच्चे सेना में नहीं जाते। उन्हें देशप्रेम के वे रूप बताए जाने चाहिए जो उनके आस-पास और उनकी पहुंच में हैं। उनका वर्तमान सिर्फ भविष्य की पूर्वपीठिका नहीं है, उनका वर्तमान सबसे बड़ा सच है। ''बच्चे का 'भविष्य' अब इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि उसके 'वर्तमान' को अनदेखा किया जा रहा है, जो बच्चे, समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर है।'' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपेरखा 2005: परिचय, पृ. 2)

चित्र-5

जय जवान—जय किसान

चित्र-6

आगे की कक्षाओं में जो मिथकीय-पौराणिक और सामंती परिवेश की कथाएं आदर्श के रूप में प्रस्तुत की गई हैं, उनका विश्लेषण यहां स्थानाभाव के कारण नहीं किया जा रहा है किन्तु उनके बीज पहली ही कक्षा में हैं, यह स्पष्ट है। दरअसल जो सबसे बड़ा नुकसान ये किताब करती है, उसे न तो अधिकार हनन के दायरे में स्पष्टता से रखकर कोई वाद दाखिल किया जा सकता है, न किसी समुदाय की भावनाओं को उससे ठेस पहुंचती है कि जन दबाव उसे वापिस लेने के लिए आंदोलन करे। जो सबसे गहरा और दूरगामी नुकसान है, वह यह कि यह किताब ठस और उबाऊ है। यह बच्चे की शुरुआती उमंगों पर तुषारापात कर सकती है और भाषा एवं रचनात्मकता से उसकी स्थाई दूरी बना सकती है। मैंने लेख की शुरुआत वर्णमाला के लिए लिखी कुछ कविताओं के विश्लेषण से की थी। वे कविताएं, जो स्पष्टतया आपत्तिजनक नहीं हैं, वे भी लयहीन, असंगत और अतार्किकता से भरी हैं। 'चरखा देखो घूम रहा/कितना धागा बुन रहा' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 15) जैसी बेसुरी, 'षटकोण यह कहलाता है/सबके मन को भाता है' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 73) जैसी बेतुकी कविताएं किसी भी बच्चे को हमेशा के लिए इस पठन-पाठन से दूर कर सकती है। मशहूर शिक्षाविद प्रो. कृष्ण कुमार हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों के अपने एक विश्लेषण में लिखते हैं, ''पहली ही कक्षा में इस प्रक्रिया का आरम्भ हो जाना महत्वपूर्ण है और स्थापित परिपाटी की दृष्टि से तर्कसंगत भी। पहली कक्षा बच्चे को साक्षर बनाती है, उनकी नवजात साक्षरता का उपयोग सीधे-सीधे ऐसे कथानकों में करना पाठ्यपुस्तक का उद्देश्य है जो उनकी स्वतंत्र अर्थ खोज को पहले से नियत अर्थों की पहचान करने की दिशा में मोड़ दें। इसे हम साक्षरता का समाजीकरण करने वाला पक्ष भी कह सकते हैं और रसिकता की हत्या करने वाला पक्ष भी। सच तो ये है कि हिन्दी की पहली किताब बच्चे को साक्षर इस तरह बनाती है कि अर्थग्रहण की उसकी स्वाभाविक इच्छा कुंद हो जाए।'' (कृष्ण कुमार, 'पाठ्यपुस्तकों की हिन्दी', शैक्षिक संदर्भ, अंक 45, पृ. 83)। तो यह बचपन की रचनात्मकता की हत्या है। यह भावी पंक्तिबद्ध अुयायी गढ़ने की शुरुआत है, इसके खिलाफ कौनसा वाद दाखिल किया जाए? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 विचारधारा की बहसों से ऊपर उठकर शिक्षण पद्धति में कुछ मूलभूत परिवर्तनों की बयार लाई थी, लेकिन हम लौटकर फिर वहीं आ गए।

उपसंहारः मेरी एक दोस्त जो अपने बागी तेवरों के लिए 'कुख्यात' थीं, मैंने उनके निर्माण के बारे में बात की। उन्होंने इसका श्रेय अपने स्कूल को दिया। मैंने आगे, उम्मीद के साथ, जानना चाहा तो उन्होंने मुस्कुराकर तीन शब्द में बात समझा दी, 'टू मच रेजिमेंटेशन!' मुझे आज की पीढ़ी के बारे में भी यही लगता है। उसे आप आज फीका, एकांगी और पूर्वाग्रह ग्रस्त ज्ञान घुट्टी में पिलाना चाहेंगे तो वह आपके झांसे में नहीं आएगी क्योंकि वह खुद आज है। ◆

संदर्भ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005; दस्तावेज इस वेब पते पर उपलब्ध हैं: http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/ncf_hindi_2005/ncf2005.pdf

भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र; दस्तावेज इस वेब पते पर उपलब्ध हैः http://www.eklavya.in/pdfs/Sandarbh/Sandarbh_45/75-87_Hindi_in_Text_books.pdf

POSITION PAPER, NATIONAL FOCUS GROUP ON GENDER ISSUES IN EDUCATION; दस्तावेज इस वेब पते पर उपलब्ध हैंः http://www.ncert.nic.in/new_ncert/ncert/rightside/links/pdf/focus_group/gender_issues_in_education.pdf

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986; दस्तावेज इस एक वेब पते पर उपलब्ध हैंः http://www.ncert.nic.in/oth_anoun/national_policy_hindi.pdf

पाठ्यपुस्तकों की हिन्दी, कृष्ण कुमार, शैक्षिक संदर्भ, अंक 45, पृ. 83; लेख इस वेब पते पर उपलब्ध हैः http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/h_focus_group/Bhartiya%20Bhasaon%20Ka%20Sikshan.pdf

लेखक परिचयः पिछले 17 वर्षों से कॉलेज शिक्षा में साहित्य के प्राध्यापक हैं और जुलाई-दिसम्बर, 2005 में प्रकाशित 'शिक्षा विमर्श' के 'बाल साहित्य विशेषांक' के अतिथि संपादक भी रहे हैं।

राजस्थान की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें

हठधर्मिता, पितृसत्ता व युद्धोन्मादी राष्ट्रवाद की पोषक

देवयानी भारद्वाज

राजस्थान में राज्य शिक्षा, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान ने आनन-फानन में जो किताबें बनाईं उनमें हिंदी की किताबों से गुजरते हुए यह सवाल बार-बार मन में उठता है कि यह किताबें किस तरह की भावी पीढी के निर्माण की दिशा में प्रयत्नशील हैं। किताबों में दी गई विषय-वस्तु और उसे बरतने के अंदाज को देखते हुए जो तस्वीर उभरती है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह किताबें युद्धोन्माद को बढ़ावा देती हैं, तर्क की बजाय हठधर्मिता को बढ़ावा देती हैं, मुख्यतः ब्राह्मणवादी और राजपूती पहचान की श्रेष्ठता को स्थापित करती हैं, हिन्दू राष्ट्रवाद के विचार को पोषित करती हैं, स्त्रियों का समाज में दोयम दर्जा सुनिश्चित करती हैं, स्त्री और पुरुषों को उनकी रूढ़ भूमिकाओं में कैद करती हैं, सामाजिक समरसता को कायम करने की बजाय विभेद को बढ़ावा देती हैं, अक्सर शहरी मध्यमवर्गीय सवर्ण पुरुष को संबोधित यह किताबें शेष सभी को अन्य की तरह देखती हैं।

अपने प्राक्कथन में इनका दावा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 को ध्यान में रखते हुए किताबों के निर्माण का है। किताबों के नजरिए को लेकर 'प्राक्कथन' और 'शिक्षकों से...' (यह शीर्षक भी अधूरा लगता है) जैस शीर्षकों के तहत कुछ दावे किए गए हैं। कक्षा 1 से 8 तक हिंदी की सभी किताबों के प्राक्कथन में कहा गया है, 'वर्तमान में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 तथा निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के द्वारा यह स्पष्ट है कि सभी शिक्षण क्रियाओं में 'विद्यार्थी' केंद्र के रूप में हैं।' इसी अनुच्छेद की आखिरी लाइन में कहा गया है, 'पाठ्यचर्या को सही रूप में पहुंचाने के लिए पाठ्यपुस्तक एक महत्वपूर्ण साधन है। अतः बदलती पाठ्यचर्या के अनुरूप ही पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन कर राज्य सरकार द्वारा नवीन पाठ्यपुस्तक तैयार कराई गई है।' इन पंक्तियों से स्पष्ट नहीं होता कि पाठ्यपुस्तक और पाठ्यचर्या के बीच संबंध को कैसे देखा गया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का जिक्र एक बार यह भ्रम पैदा करता है कि यह किताबें उन सैद्धांतिक आधारों से सहमत हैं जो इस दस्तावेज में उल्लिखित हैं, लेकिन जब किताबों को पलटते हैं तो वे सैद्धांतिक आधार कहीं नजर नहीं आते। ऐसे में यह संशय गहराने लगता है कि 'बदलती पाठ्यचर्या' से दरअसल आशय क्या है? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की मान्यताओं के साथ यदि सहमति है तो पाठ्यचर्या को बदले लंबा अरसा बीत चुका है। फिर यहां किस बदलती पाठ्यचर्या का जिक्र किया गया है? यदि कोई और पाठ्यचर्या है जो बदल रही है, तो उसको बदलने से पहले किताबों को बदलना कहां तक उचित है? यदि पाठ्यचर्या में बदलाव की कोई प्रक्रिया चल रही है तो वह क्या प्रदेश के स्तर पर अपनी पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया है या केन्द्रीय स्तर पर इस तरह की कोई प्रक्रिया चल रही है? इन सवालों के फिलहाल कोई जवाब हमारे पास नहीं हैं। इसलिए हम फिलहाल राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 को ही आधार मानते हुए इन किताबों का विश्लेषण करने का प्रयास कर रहे हैं।

शिक्षा का स्वरूप कैसा होना चाहिए इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के दस्तावेज में, पांच निर्देशक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा हैः (1) ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना, (2) पढाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना, (3) पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुंमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए बजाए इसके कि पाठ्यपुस्तक-केन्द्रित बन कर रह जाए, (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना, और (5) एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएं समाहित हों' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005; पृ. 5-6)। दस्तावेज में कहा गया है, ''यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज इस बात की सिफारिश करता है कि विषयों के बीच की दीवारें नीची कर दी जाएं ताकि बच्चों को ज्ञान का समग्र आनंद मिल सके और चीजों को समझने से मिलने वाली खुशी हासिल हो सके। साथ यह भी सुझाया गया है कि पाठ्यपुस्तक और दूसरी सामग्री की बहुलता हो, जिनमें स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक कौशल शामिल हो सकते हैं और बच्चों के घर और सामुदायिक परिवेश से जीवंत संबंध बनाने वाले स्फूर्तिदायक स्कूली माहौल को सुनिश्चित किया जा सके।'' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005; सार संक्षेप, पृ. IX) इन दावों के बावजूद किताब की आन्तरिक विषय-वस्तु में इतनी गंभीर असंगतियां पाठ्यपुस्तक निर्माण प्रक्रिया की मंशा पर ही संशय जगाती हैं और प्राक्कथन की भाषा गुमराह करने का प्रयास साबित होने लगती है।

युद्धोन्माद और हठधर्मिता

कक्षा एक की किताब पढ़ने-पढ़ाने के रूढ़ तरीकों की तरफ तो लौट ही जाती है, इस लौटने में वह जिन प्रतीकों का चयन करती है और उन्हें जिस तरह प्रस्तुत करती है वे इस बात की बानगी हैं कि आगे की कक्षाओं में इन किताबों की दिशा क्या होगी। पृष्ठ संख्या 80 पर 'क्ष' से 'क्षत्रिय' को दिखाते हुए कहा गया है, ''क्षत्रिय युद्ध में जाते हैं, दुश्मन को मार भगाते हैं''। इसी पृष्ठ पर एक अन्य चित्र है 'त्र' से 'त्रिशूल' का और उसकी खूबी कुछ इस प्रकार बताई गई है, ''त्रिशूल होता बड़ा भयंकर, धारण करते हैं शिव शंकर'', इसी तरह वर्णमाला के पंचमाक्षर जिनसे सामान्यतः कोई शब्द शुरू नहीं होता उनमें सिर्फ 'ण' को 'बाण' के चित्र के माध्यम से प्रदर्शित करते हुए किताब कहती है, ''बाण कभी न हाथ में रखना, संभाल कर तरकश में रखना'' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 73)। न सिर्फ यह शब्द बच्चे के परिवेश में शामिल नहीं हैं, उनके लिए अपरिचित हैं बल्कि यह सभी शब्द हिंसा की वाहक सामंती संस्कृति को बढ़ावा देते हैं। 'र' से ''रथ पर देखो हुए सवार, चले सैर को राजकुमार'' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ.15) का वर्तमान संदर्भ में क्या औचित्य हो सकता है जबकि अब न कोई राजा है न कोई राजकुमार।

कक्षा तीन में एक कहानी है 'साहसी बालिका' (हिन्दी, कक्षा-3, पृ. 64) जिसमें सात साल की एक लड़की, जिसके पिता का नाम नाना फडनवीस था। नाना फडनवीस देश की आजादी चाहते थे इसलिए अंग्रेजों ने उनके घर में आग लगा दी। लड़की ने भी अंग्रेजों से कहा कि वह देश की आजादी चाहती है तो अंग्रेज सैनिकों ने उसे आग में झोंक दिया। कक्षा तीन के बच्चों को देशभक्ति का यह कैसा पाठ यह किताब पढ़ाना चाहती है। यह किताबें जगह-जगह इस तरह की कहानियों के माध्यम से बच्चों के मन में एक अनजाने भय और अलग-अलग पहचान के लोगों के प्रति नफरत के बीज बोने का काम करती हैं। इसी तरह अनेक कहानियों में किसी अनजाने बादशाह का जिक्र है जिसने बच्चों के जुलूस पर गोलियां चलवा दी। जैसे छठी कक्षा में पाठ है 'गुलाब सिंह' (हिन्दी, कक्षा-6, पृ. 39-43)। कक्षा-5 में 'भारत के भरत' (पृ. 1), 'पन्ना का त्याग' (पृ. 69-75), कक्षा-6 में 'मुंडमाल' (पृ. 60-64), 'शहीद बकरी' (पृ. 71-74), कक्षा-7 में 'शरणागत की रक्षा' (पृ. 14-18) और कक्षा-8 में 'जैसलमेर की राजकुमारी' (पृ. 43-49), 'हुंकार की कलंगी' (पृ.89-94) के अलावा भी अनेक ऐसे पाठ शामिल हैं जो अंततः युद्ध के बहाने वीरता का बखान करते हैं। यह कहानियां या कविताएं युद्ध की विभीषिका, उसमें होने वाली जन-धन की हानि आदि के बारे में किसी तरह से संवाद की गुंजाइश नहीं खोलतीं बल्कि एक पक्ष को नायक और दूसरे को खलनायक के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

युद्धोन्माद का विस्तार हठधर्मिता के रूप में अनेक पाठों में देखने को मिलता है। यहां तक कि ऐसी कहानियां जिनके पीछे नियोजित विद्रोह की कथाएं रही हैं वे भी इन किताबों में महज हठधर्मिता की कथा बनकर रह गई हैं, जैसे कक्षा 4 में कहानी 'गुरुभक्त काली बाई' (पृ. 66-72) अंग्रेजों के दमन के खिलाफ संगठित होते लोगों के असंतोष

और बगावत की कहानी है। लेकिन पाठ्यपुस्तक में यह गुरुभक्ति के लिए प्राण की बाजी लगा देने की कहानी में सीमित होकर रह जाती है। इसी तरह गुलाब सिंह एक कौमी जुलूस में झंडा उठाकर चलना चाहता है, लेकिन यह जुलूस किस मकसद के लिए है कहानी नहीं बताती। सिपाही गोली क्यूं चला देते हैं यह भी कहानी नहीं बताती (हिन्दी, कक्षा-6, पृ. 39-43)।

युद्ध और वीरता का यह उन्माद जगह-जगह दिए गए नीति वाक्यों में भी झलकता है जैसे कक्षा आठ की ही किताब में पृष्ठ 49 पर लिखा है ''वीर पुरुष रोग शैय्या पर मरने की अपेक्षा रण क्षेत्र में मरना पसंद करता है।'' इसी पृष्ठ पर दिया गया सवाल, ''राजस्थान की गौरव गाथा एवं पराक्रम की घटनाओं का पता लगा कर 'मेरा संकलन' में लिखिए।'', बच्चों के मन में प्रदेश की रूढ़ छवि और एकांगी दृष्टिकोण निर्मित करने का प्रयास करता है। किसी भी प्रदेश का इतिहास इस कदर एकांगी और एकरस नहीं होता। उसमें वीरता और शांति की ललक, कला और संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, पहनावे से जुड़े कई आयाम हो सकते हैं, जिन पर कक्षा आठ के छात्रों के साथ बात-चीत की जा सकती है। वैसे भी भाषा की किताब का काम यह है कि वह इस स्तर पर बच्चों को विविध प्रकार के साहित्य से परिचित कराए, उनके लेखन के कौशल को समृद्ध बनाने पर काम करे। ''प्राथमिक स्तर और उससे पूर्व की भाषा की पाठ्यपुस्तकें खासकर ज्यादा गंभीरता व संवेदना से लिखने की जरूरत है। इन्हें संदर्भपरक स्तर पर समृद्ध और सीखने वाले की रचनात्मकता को उचित चुनौती देने वाला होना चाहिए। इनमें केवल कविताएं व कहानियां नहीं, बल्कि विधाओं एवं विषयों के एक बड़े फलक को होना चाहिए। साथ ही ऐसे अभ्यास-प्रश्न भी होने चाहिए जिनमें अत्यंत सूक्ष्म अवलोकन व विश्लेषण की जरूरत पड़े और जो अंततः मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति के सौन्दर्यपरक संश्लेषण की ओर अग्रसर करें'' (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, पृ. 24)। लेकिन यह किताबें अपनी पूरी कोशिश खुद को युद्धोन्मादी बनाने में करती नजर आती हैं।

बहुत सारे पाठों की विषयवस्तु अपनी किसी जिद के लिए युद्ध को बुलावा देने की है। इतिहास हो सकता है कि इन गाथाओं का गवाह रहा हो, लेकिन भाषा की किताब में उन घटनाओं के समावेश का तार्किक आधार क्या है? पाठ इन घटनाओं पर किसी तरह के चिंतन को आमंत्रित करने कि बजाय युद्ध के प्रति आग्रह का महिमामंडन सा करते हुए जान पड़ते हैं। अपनी जिद के लिए युद्ध को यह किताबें बार-बार वीरता के पैमाने की तरह प्रस्तुत करती हैं। अधिकांशतः इन पाठों में युद्ध या हिंसा का आधार कथा नायक की जिद ही पाई गई है।

ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और हिन्दू राष्ट्रवाद

कक्षा एक में जहां रथ, त्रिशूल, क्षत्रिय, बाण, ऋषि, ज्ञानी, दीदी, औरत आदि शब्दों और उनके सम्बन्ध में दी गई पंक्तियों से इनके रुझान का पता चलता है वहीं आगे कि कक्षाओं में यह रुझान विभिन्न कहानी-कविताओं से और अधिक मुखर होता चला गया है। कक्षा 2 से 8 तक सभी कक्षाओं में हिंदी की किताब में पहला पाठ देशभक्ति और प्रार्थना का मिला-जुला रूप है, जिसमें अकसर कथित भारत-माता या किसी अन्य प्रकार के चित्र के सामने बच्चे हाथ जोड़े या झंडा उठाए चल रहे हैं। कक्षा 2 में 'रक्षा बंधन' (पृ. 48-54), कक्षा 3 में 'अटल ध्रुव' (पृ. 83-90), कक्षा 4 में 'दशहरा' (पृ. 22-27), 'वीर बालक अभिमन्यु' (पृ. 32-37), कक्षा 5 में 'भारत के भरत' (पृ. 1), 'क्यों देते हैं नारियल की भेंट' (पृ. 15), 'अनोखी सूझ' (पृ. 20-24), 'बालक का स्वप्न' (पृ. 32-36), 'कामधेनु' (पृ. 45), 'पन्ना का त्याग' (पृ. 69-75), कक्षा 6 में 'हे मातृभूमि' (पृ. 1), 'भक्ति माधुरी' (पृ. 36-38), 'गुलाब सिंह' (पृ. 9-43), 'हमारा ऊंचा झंडा' (पृ. 44), 'तीर्थराज मचकुंड' (पृ. 45), 'मुंडमाल' (पृ. 60-64), 'योग और हमारा स्वास्थ्य' (पृ. 75-81), कक्षा 7 में 'सादर नमन' (पृ. 1), 'लव-कुश' (पृ. 4-9), 'इसे जगाओ' (पृ. 11-13), 'शरणागत की रक्षा' (पृ. 14-18), 'बेणेश्वर की यात्रा' (पृ.19), 'केवट का प्रेम' (पृ.43-45), 'भारत की मनस्विनी महिलाएं' (पृ. 62-68) और कक्षा 8 में 'समर्पण' (पृ. 1), 'हम करें राष्ट्र आराधन' (पृ. 4), 'सुदामाचरित' (पृ. 19-21), 'महाराणा प्रताप' (पृ. 24-27), 'संत कंवरा राम' (पृ. 28-32), 'गौ संरक्षण से ग्राम विकास' (पृ. 55-59) आदि पाठों के नामों से जाहिर है अधिकांश पाठ हिन्दू, ब्राह्मणवादी सोच, राजपूती ठसक, हिन्दू तीर्थ स्थल, हिन्दू त्यौहार आदि की विषयवस्तु अपने में समाहित किए हुए हैं। इनका विश्लेषण करते हैं तो यह प्रवृत्तियां पाठों में और गहरे तक पैठ जमाए मिलती हैं।

रूढ़भूमिका और पितृसत्ता

स्त्री के प्रति यह नजरिया कक्षा 1 में शुरू होता है जिसमें 'औ' से 'औरत' पढ़ाते हुए उसे ममता की मूरत बताया है 'औरत ममता की मूरत है, भोली-भाली सूरत है' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 68)। यह भोली-भाली सूरत, ममता की मूरत आगे चलकर इन कहानियों में त्याग, बलिदान की मूर्ति बनती जाती है। कक्षा 6 में आए पाठ 'गुलाब सिंह' (हिन्दी, कक्षा-6, पृ. 39-43), में शुरुआत में बहन और मां के प्रति प्रेम की बातें हैं और उनके बाद एक कौमी जुलूस में जब बहन भागीदारी करना चाहती है तो भाई उसे रोक देता है। वह बहन से राजकुमार की तरह तिलक करवा कर झंडा उठाकर चल पड़ता है। जुलूस का मकसद, बादशाह के अत्याचार के कोई आधार नहीं है, सिर्फ एक उन्माद-सा नजर आता है जिसके लिए भाई जुलूस और झंडा लेकर चल पड़ता है और उसी तरह के उन्माद के साथ उसे मार दिया जाता है। जब भाई मर जाता है तो वही झंडा बहन उठाकर चल पड़ती है। यानी प्राथमिक तौर पर भाई निकलता है, लेकिन यदि भाई को मार दिया गया है तो उसके मकसद को बहन आगे ले जाती है। वह न अपना निर्णय खुद ले सकती है न ही प्राथमिक तौर पर नेतृत्व उसका काम माना गया है। कहने को यह कहानी सुभद्रा कुमारी चौहान की है, लेकिन बड़े लेखकों की खराब रचनाओं का चयन इन किताबों की एक प्रमुख विशेषता नजर आती है। स्त्री पुरुष की अनुगामी है इसकी झलक जगह-जगह पर अभ्यास के प्रश्नों में भी मिलती है, उदाहरण के लिए, कक्षा 2 में पाठ 11 'शेर और चूहा' (पृ. 79) के साथ दिया गया अभ्यास का प्रश्न, ''जैसे आऊंगा से आऊंगी बना। इसी तरह आप भी नीचे दिए गए शब्दों से नए शब्द बनाएं खाऊंगा, चलूंगा, नाचूंगा, करूंगा...'', इससे बच्चों को यह समझ आता है कि भाषा में मूल क्रिया पुरुष-वाचक होती है और स्त्री-वाचक क्रियाएं उसी से निर्मित होती हैं।

स्त्री के प्रति इस नजरिए का वीभत्स उदाहरण देखने को मिलता है कक्षा 6 की किताब में दिए पाठ 'मुंडमाल' (पृ. 60-64) में। सरदार चुण्डावत, जो खुद उम्र में 18 वर्ष से कम हैं, युद्ध में जाने को तैयार खड़े हैं तभी झरोखे में खडी अपनी नवोढ़ा पत्नी पर नजर पड़ती है। ''हाडा वंश की सुलक्षणा, सुशीला और सुन्दर सुकुमारी कन्या'' (पृ. 60) यानि तमाम विशेषणों के बावजूद अब तक इस स्त्री का नाम नहीं बताया गया है। इसी तरह 'रूपनगर के राठौड़ वंश की राजकुमारी' (पृ. 61) का भी कोई नाम नहीं हैं। इस राजकुमारी की रक्षा के लिए जाने वाले सरदार चुण्डावत का अपनी रानी को देखकर चित्त चंचल हो रहा है। अंततः हाड़ी रानी अपना सर कलम कर सरदार को भेंट कर देती है ताकि सरदार उसके तुच्छ शरीर से ध्यान हटाकर युद्ध में ध्यान दे सकें। यह कहानी हर लिहाज से आपत्तिजनक है। इसमें व्यक्त भावनाएं छठी कक्षा के बच्चों की उम्र और समझ के स्तर के लिहाज से सर्वथा अनुपयुक्त हैं। इस पाठ में सतीत्व का महिमामंडन है जो सती कानून का खुला उल्लंघन है। इस विषयवस्तु को कक्षा 6 की किताब में शामिल करना पाठ्यचर्या में बताए गए शैक्षिक सिद्धांतों का उल्लंघन तो है ही साथ ही सती प्रथा का महिमामंडन व बाल विवाह को स्थापित करना भी है। यह विषयवस्तु स्त्री के प्रति रूढ़ धारणाओं को ही स्थापित नहीं करती बल्कि उसके प्रति हिंसा को भी बढ़ावा देती है। पाठ के अंत में चुण्ड़ावत रानी के कटे हुए शीश को गले में लटका कर युद्ध के लिए चल पड़ता है, यह दृश्य अत्यधिक वीभत्स दृश्य की रचना करता है। कक्षा छह के बच्चों के मस्तिष्क पर यह बिम्ब किस तरह का असर डालेगा, यह गंभीर चिंता का विषय होना चाहिए।

'जैसलमेर की राजकुमारी' पाठ में राजकुमारी कहती है ''मैं स्त्री हूं पर अबला नहीं हूं। मुझमें मर्दों जैसा साहस और हिम्मत है। मैं और मेरी सहेलियां देखने भर की स्त्रियां हैं।'' (हिन्दी, कक्षा-8, पृ. 43-49) यानि साहस और हिम्मत मूलतः मर्दों के गुण हैं, लेकिन जैसलमेर की राजकुमारी और उनकी सहेलियां देखने भर की स्त्रियां हैं, बाकी तो वे मर्दाने गुणों से युक्त हैं। एक तो इन किताबों में साहस सिर्फ युद्ध के क्षेत्र में काम आने वाला कोई गुण है, जीवन में और कहीं इनके अनुसार साहस की जरूरत नहीं होती। दूसरे यह मूलतः मर्दाना गुण है और जहां कोई-कोई स्त्री साहसी नजर आती है तो वह स्त्रियों में अपवाद स्वरूप ही है।

स्त्री के प्रति यही नजरिया कक्षा 7 के पाठ 13 'भारत की मनस्विनी महिलाएं' में भी स्त्री की इसी रूढ़ छवि को स्थापित करता है। दादाजी पत्र के माध्यम से अपनी पोती किरण को कहते हैं 'तुम मनस्विनी महिलाओं के बारे में जानोगी, तो उनके सद्गुण अनायास तुम्हारे मन में आ जाएंगे। तुम्हारे जीवन में उनके क्रमशः समावेश से तुम्हारे

उज्जवल भविष्य का पथ स्वतः प्रशस्त हो उठेगा।' (हिन्दी, कक्षा-7, पाठ 13, पृ. 62)। इन पंक्तियों में आए ''उनके सद्‌गुण अनायास तुम्हारे मन में आ जाएंगे'' वाक्यांश पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इसमें सीखने व समाजीकरण की एक धारणा छुपी है जो सीखने को उपदेश सुनने के बरक्स लाकर खड़ा कर देती है जबकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा बाल-केन्द्रित शिक्षा-शास्त्र के बारे में सुझाव देते हुए कहती है, ''बाल-केन्द्रित शिक्षा-शास्त्र का अर्थ है बच्चों के अनुभवों, उनके स्वरों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना।'' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, पृ. 15) इसी पृष्ठ पर आगे यह दस्तावेज कहता है, ''किताबी ज्ञान को दोहराने की क्षमता के विकास की बजाए पाठ्यचर्या बच्चों को इतना सक्षम बनाए कि वे अपनी आवाज ढूंढ़ सकें, अपनी उत्सुकता का पोषण कर सकें, स्वयं करें, सवाल पूछें, जांचें-परखें और अपने अनुभवों को स्कूली ज्ञान के साथ जोड़ सकें'' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, पृ. 15)। किन्तु यह पाठ महिलाओं का अतिरेक पूर्ण महिमामंडन करते हुए कहता है ''त्याग, तपस्या, शौर्य, उदारता, भक्ति, वात्सल्य, जन्मभूमि प्रेम तथा आध्यात्म चिंतन से सुधि समाज के सम्मुख उच्चादर्श भी प्रस्तुत करती आ रही हैं।'' (हिन्दी, कक्षा-7, पाठ 13, पृ. 62), इसे आगे बढ़ाते हुए पाठ में आगे कहा गया है ''नारी ने ही पुरुष को गृहस्थ और किसान बनाया।'' (हिन्दी, कक्षा-7, पाठ 13, पृ. 63), इस तरह की भाषा द्वारा स्त्री का महिमामंडन करने के बहाने यह पाठ स्त्री की भूमिका को पुरुष के सापेक्ष स्थापित करता है और उसकी भूमिका को घर-परिवार की चार दीवारी में कैद और रूढ़ करता जाता है। इसका विस्तार पाठ में पुनः हिन्दु मिथकीय पात्रों को स्थापित करने के रूप में होता है। पाठ गौरी ('पार्वती, जिसने हिमाचल के घर में जन्म लिया और पति रूप में शिव की प्राप्ति के लिए घोर तप किया था। ...पार्वती नारी जाती का प्रतिनिधित्व करती है।'), सावित्री (''राजमहल के लाड़ प्यार में पली उस सुकुमारी ने ससुराल की मर्यादा की रक्षा के लिए किस प्रकार सहर्ष वन्य जीवन अपना लिया था।''), माता अनुसूया, माता मदालसा, गार्गी और मैत्रेयी, राजा दशरथ की रानी कैकेयी (''तुम जानते हो कैकेयी ने क्या किया। ...उसने कील के स्थान पर उंगली लगा दी। ...विजय राजा की हुई। तब उनका ध्यान गया कैकेयी की ओर, उसकी उंगली की ओर।''), सीता, (''ऐसी सुकुमारी, ऐसी कोमल परिस्थिति में पली-बढ़ी। किन्तु जब पति को वन जाना पड़ा तो भूल गई अपनी सुख-सुविधा और चल पड़ी तपस्विनी वेश में पति की सेवा के लिए ...अयोध्या आकर राम राजा बने तो सीता को वनवास दे दिया और सीता को कोई शिकायत नहीं, कोई प्रतिवाद नहीं! जो मर्जी पति परमेश्वार की, वही हो''), से होता हुआ रानी भवानी, अहल्याबाई, लक्ष्मी बाई, रामकृष्ण परमहंस की पत्नी शारदा मणि पर आकर रुक जाता है। स्त्री छवि को रूढ़ीबद्ध करने वाला और हिन्दू परंपरा को बढ़ावा देने वाला यह पाठ शिक्षा के उद्देश्यों, समावेशी शिक्षा और संविधान के मूल्यों के विरुद्ध नजर आता है। इन महिलाओं के संदर्भ में दादाजी का यह कहना, ''तुम मनस्विनी महिलाओं के बारे में जानोगी, तो उनके सद्‌गुण अनायास तुम्हारे मन में आ जाएंगे। तुम्हारे जीवन में उनके क्रमशः समावेश से तुम्हारे उज्जवल भविष्य का पथ स्वतः प्रशस्त हो उठेगा।'' (हिन्दी, कक्षा-7, पाठ 13, पृ. 62), इन किताबों को पढ़ने वाली बालिकाओं पर भी एक खास तरह की भूमिका को स्वीकारने का नैतिक दबाव बनाता हुआ नजर आता है, जो उनके समानता के मौलिक, संवैधानिक अधिकार का हनन है। पाठ के अंत में सूक्ति वाक्य है 'एक नारी की जिन्दगी वत्सलता का इतिहास है' (हिन्दी, कक्षा-7, पाठ 13, पृ. 68), यह पुनः उसी मूल्यबोध को स्थापित करता है।

रटंत प्रणाली को बढ़ावा

हिंदी भाषा की सभी किताबें 'प्राक्कथन' में यह भी कहती हैं कि ''सभी शिक्षण क्रियाओं में विद्यार्थी केंद्र के रूप में हों''। लेकिन जब किताबों को पलटना शुरू करते हैं तो उपरोक्त किसी भी निर्देशक सिद्धांत या मान्यता के साथ इन किताबों की संगति नजर नहीं आती। कक्षा 1 से 8 तक की सभी किताबें भाषा सीखने की रटंत प्रणाली को बढ़ावा देती हुई नजर आती हैं। भाषा सिखाने के किस नजरिए का पालन इन किताबों में किया गया है इसकी बानगी पहली कक्षा की किताब के कवर पेज से ही मिलने लगती है, जिसमें बच्चों के हाथ में उड़ते गुब्बारों पर वर्णमाला के विभिन्न अक्षर लिख कर छोड़ दिए गए हैं।

छोटे बच्चों को भाषा सिखाने में बातचीत, कविता और कहानी की भूमिका को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। इस किताब में कविता-कहानी के प्रति सलूक इस मान्यता के बिलकुल उलट नजर आता है। बिना किसी चित्र के एक

पृष्ठ पर एक साथ चार कविताएं दे दी गई हैं। यह कविताएं भी अपनी विषयवस्तु और भाषा शैली में बच्चों को आकर्षित कर सकें ऐसी नहीं हैं। चार में से दो कविताएं बच्चों को स्वच्छता का पाठ पढ़ाने लगती हैं। जैसे 'जंगल में नाचा है मोर/मेंढक बजा रहा है ढोल/गन्दा पानी मत तुम पीना/शंका में भी कभी न जीना।' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 2), इसी तरह एक अन्य कविता है 'हुआ सवेरा चिड़िया बोली/बच्चों ने तब आंखें खोलीं/अच्छे बच्चे मंजन करते/मंजन करके कुल्ला करते/कुल्ला करके मुंह को धोते/मुंह धोकर के रोज नहाते/रोज नहा कर खाना खाते/खाना खाकर पढ़ने जाते।'' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 2), आगे पांच पृष्ठों पर पशुओं, पक्षियों, फलों, सब्जियों और शरीर के अंगों के चित्र हैं (हिन्दी, कक्षा-1, पृ.4-8) और शिक्षक को निर्देश हैं कि वे इन चित्रों पर बात करें। किताब कहीं भी अवसर आने पर स्वच्छता की ओर ध्यान दिलाने से नहीं चूकती है। जैसे ''पक्षी पर्यावरण को स्वच्छ बनाते हैं'' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 4) या ''शरीर के अंगों के नाम, काम व स्वच्छता के बारे में बातचीत करें।'' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 8) ऐसा लगता है जैसे देश में स्वच्छता अभियान को संचालित करने का सारा दारोमदार प्राथमिक कक्षा की हिन्दी की किताबों पर ही आ गया है। क्योंकि शरीर के अंगों से संबंधित चित्रों के बाद अगला पाठ फिर कविता है ''आंख में अंजन/दांत में मंजन/नितकर, नितकर, नितकर...'' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 9), लगातार इस तरह की उपदेश परक विषयवस्तु एक विशिष्ट शहरी माध्यम वर्गीय नैतिकता का प्रदर्शन करती है, जिसमें बच्चों को अपने अनुभव और परिवेश के अनुरूप अंतर्क्रिया का कोई अवसर नहीं है।

भाषा सीखने के सैद्धांतिक आधार इस बात को प्रमाणित करते हैं कि कहानी बच्चों की रुचि को बनाए रखती है और भाषा सीखने में सहायक होती है। अनेक प्रयोग इस सिद्धांत को प्रमाणित कर चुके हैं। लेकिन कहानी को कक्षा एक के लिए किताब में जगह देने की भी जरुरत नहीं समझी गई। इस किताब में एक मात्र कहानी 'चित्र पठन' के रूप में दी गई है। एक पन्ने पर चार चित्रों के माध्यम से कहानी 'खट्टे अंगूर' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 13) को दर्शाया गया है। एक पंक्ति के निर्देश में चित्रों पर बातचीत कर कहानी बनाने को कहा गया है। कक्षा 2 में इसी कहानी को एक चित्र के साथ दस पंक्तियों की कहानी के रूप में पेश कर दिया गया है (पृ. 13)। न पहली कक्षा के चित्र सुरुचिपूर्ण हैं और न दूसरी कक्षा में कहानी की भाषा सरस। पूरे एक साल के बाद उसी कहानी को देकर किताब किन शैक्षिक लक्ष्यों को पाना चाहती है?

पहली कक्षा में इसके बाद दो पृष्ठ पेन्सिल पकड़ने का अभ्यास करने के लिए सीधी-आड़ी रेखाएं और बुनयादी मोड़ के अभ्यास के लिए हैं (पृ. 10-11)। दो पृष्ठों पर अंगूठे वाले चित्रों के बाद पृष्ठ 15 से 83 तक एक पृष्ठ पर चार वर्ण, प्रत्येक वर्ण से शुरू होने वाला एक शब्द और दिए गए शब्द के बारे में दो पंक्तियां दी गई हैं। वर्ण पहचान के लिए किसी वर्ण का संबंध मात्र किसी एक शब्द से जोड़ देना पढ़ना-लिखना सीखने में किस तरह का गतिरोध खड़ा करता है तथा इस वर्ण व शब्द के संबंध को फिर अलग करने के लिए शिक्षकों को कैसे मशक्कत करनी पड़ती है उस विमर्श से लगता है यह किताबें पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। पृष्ठ संख्या 85 पर 'अब तक सीखा हुआ' शीर्षक के तहत दी गई स्वर, मात्राओं, व्यंजन और संयुक्ताक्षर की सूची पहली कक्षा में भाषा शिक्षण के प्रति यदि किताब के नजरिए को लेकर कोई संशय हो तो उसे भी दूर कर देती है। वर्ण पहचान के लिए चुने गए शब्दों का बच्चों के परिवेश, उनके अनुभव संसार के साथ कोई सम्बन्ध है या नहीं इसके प्रति भी यह किताबें पूरी तरह बेपरवाह नजर आती हैं।

कुल मिलाकर यह किताबें बच्चों को विवेकवान, कल्पनाशील और तर्कशील व्यक्ति की बजाए रट्टू तोते व सिर झुका आज्ञा का पालन करने वाले और चिंतन में अक्षम व्यक्ति के तौर पर करती नजर आती हैं। ◆

संदर्भ

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, रा. शै. अनु. प्र.प., 2006

2. भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, रा. शै. अनु. प्र.प., 2006

लेखिका परिचय : लगभग 10 वर्ष तक पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य किया, उसके बाद 4 वर्ष तक शिक्षा एवं महिलाओं से जुड़े विभिन्न मुद्दों को लेकर स्वतंत्र रूप से कार्य किया और लगभग 4 वर्ष तक दिगन्तर, जयपुर से जुड़ी रहीं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, राजस्थान में भाषा की संदर्भ व्यक्ति के तौर पर कार्यरत हैं।

गणित

चिंतन या सोचने का तरीका एक प्रक्रिया है, कोई उत्पाद नहीं। इसलिए उसे लिया/दिया नहीं जाता बल्कि विकसित करना पड़ता है। जैसे, तैरना सीखने के लिए तैरना ही पड़ता है वैसे ही गणितीय चिंतन के तौर तरीकों को सीखने या उन्हें विकसित करने के लिए भी कुछ प्रक्रियाओं का लगातार इस्तेमाल करने की जरूरत पड़ती ही है। ...ये पाठ्यपुस्तकें गणितीयकरण की प्रक्रियाओं को ठीक से सिखा पाने में बुरी तरह से नाकाम रहती हैं और नतीजे में बच्चों के सोचने व चिंतन करने के तरीकों का गणितीयकरण करने में भी।

गणितीयकरण में नाकाम नई पाठ्यपुस्तकें

रविकांत

"हमारे विद्यालयों में गणित शिक्षण का प्रमुख लक्ष्य क्या होना चाहिए?" इस सवाल का जवाब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 तथा उसका बुनियादी दस्तावेज - गणित शिक्षण के लिए बनाया गया आधार पत्र (पोजीशन पेपर) कुछ इस तरह से देते हैं "बच्चों (यानी शिक्षार्थी) की सोचने यानी चिंतन प्रक्रियाओं का **गणितीयकरण** करना।" इस लक्ष्य को तय करते ही यह सवाल भी उठता है कि गणितीय तौर तरीकों से सोचने या चिंतन करने में ऐसी कौन-कौनसी खासियतें हैं और उन्हें कैसे विकसित किया जा सकता है।

चूंकि चिंतन या सोचने का तरीका एक प्रक्रिया है, कोई उत्पाद नहीं इसलिए उसे लिया/दिया नहीं जाता बल्कि विकसित करना पड़ता है। जैसे, तैरना सीखने के लिए तैरना ही पड़ता है वैसे ही गणितीय चिंतन के तौर तरीकों को सीखने या उन्हें विकसित करने के लिए भी कुछ प्रक्रियाओं का लगातार इस्तेमाल करने की जरूरत पड़ती ही है। पोजीशन पेपर उन जरूरी गणितीय प्रक्रियाओं को हमारे सामने रखता है और इसके साथ ही गणित शिक्षण को लेकर एक समग्र नजरिया भी प्रस्तुत करता है।

गणित के पोजीशन पेपर के मुताबिक निम्नलिखित गणितीय प्रक्रियाओं के जरिए शिक्षार्थियों के सोचने यानी चिंतन करने के तरीके का गणितीयकरण किया जाना चाहिए।

1. औपचारिक समस्या समाधान (कुछ आम गुरों का इस्तेमाल करना, जैसेः अमूर्तन करना, मात्रा में बदलना, समरूपता (यानी एनोलॉजी) की तलाश करना, मामले का विश्लेषण करना, किसी समस्या को सरल घटकों में तोड़ना, अंदाजा-जांच करना आदि)
2. मात्रा का अंदाज तथा हलों का करीब-करीब सही अनुमान लगाना
3. उपयुक्ततम यानी मौजूदा सूचनाओं को बेहतरीन इस्तेमाल करके तरीकों का चयन करना
4. पैटर्न का इस्तेमाल करना व पैटर्न बनाना
5. दृश्यीकरण तथा प्रस्तुतीकरण (अनेक तरीकों से), जैसे जोड़ को चीजों के चित्रों से तथा संख्या रेखा पर दर्शाना
6. संबंध जोड़ना (गणित के अंदर गणितीय अवधारणाओं के बीच तथा गणित का दूसरे विषयों के साथ)
7. व्यवस्थित तरीके से तर्क करना (अपनी दलील को विकसित करना, दलील की जांच करना, अनुमान गढ़ना व उसकी छानबीन करना, अनेक तरीकों से तर्क करने की समझ विकसित करना)
8. गणितीय संप्रेषण (भाषा का सटीक व स्पष्ट अर्थों में इस्तेमाल करना व गणितीय विचार का, कथनों का निरूपण करना तथा इसका उल्टा)

पोजीशन पेपर यह भी कहता है कि इन सभी प्रक्रियाओं को विकसित करते वक्त

- काम करने के तौर तरीकों, प्रक्रियाओं तथा हलों के एक नहीं बल्कि अनेक तरीकों पर जोर देना चाहिए।

- गणनविधि (यानी गणना करने के कदम) का इस्तेमाल करके एक ही सही जवाब को हासिल करने के शिकंजे से गणित की गरदन छुड़ाना बहुत जरूरी है।
- गणितीय क्षमताएं सामाजिक हालातों तथा उन गतिविधियों के जरिए विकसित होती हैं जिनमें उन्हें सीखा जाता है।
- समस्याओं को हल करने का सिर्फ व सिर्फ एक तरीका सभी सीखने वालों के लिए नुकसानदेह होता है।

गणित शिक्षण के बारे में एक समग्र नजरिया प्रस्तुत करते वक्त उपरोक्त बातों को शामिल करते हुए पोजीशन पेपर इस बात की तरफ भी हमारा ध्यान दिलाता है कि गणित पर काम इस तरह से किया जाए कि बच्चे गणित में आनंद उठाएं। अध्यापक कक्षा के सिर्फ कुछ ही नहीं बल्कि **हरेक बच्चे को** गणित सीखने से जोड़ें। बच्चे सिर्फ कैसे करना है, इतना ही नहीं, बल्कि यह बात भी सीखें कि उसे वैसे ही क्यों करना है, कब व कैसे उस तरीके का इस्तेमाल करना है, आदि। इसके साथ ही बच्चे गणित के बुनियादी ढांचे को समझें। सबसे अहम बात यह है कि बच्चे तार्किक चिंतन करना सीखें, चीजों के बारे में तर्क करें, वक्तव्यों या कथनों के सही या गलत होने की जांच करने के तरीके तथा उनकी मदद से जांच करना सीखें।

2016 में जारी की गई राजस्थान की गणित की नई पाठ्यपुस्तकों को हम गणित शिक्षण के इसी नजरिए तथा लक्ष्य को सामने रखकर देखने-समझने की कोशिश करेंगे। हालांकि ये पाठ्यपुस्तकें कहीं भी साफ-साफ यह दावा नहीं करतीं कि ये राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 पर आधारित है। लेकिन अपने 'प्राक्कथन' में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के हवाले से कहती हैं कि बालक स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझकर ज्ञान का निर्माण करें। बदलती पाठ्यचर्या के अनुरूप ही पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन करके राज्य सरकार द्वारा नई पाठ्यपुस्तकें तैयार करवाई गई हैं। वैसे इस वाक्य में आप 'पाठ्यचर्या' की जगह 'सरकार' कर दें तो इसका अर्थ शीशे की तरह साफ चमकने लगता है। इसी तरह 'शिक्षकों के लिए' लिखे गए लेख में अध्यापकों से उम्मीद जाहिर की गई है कि वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के मुख्य मार्गदर्शक सिद्धांतों को आत्मसात कर उनकी मूल भावना के अनुरूप पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु को बालकों तक पहुंचाएं। चूंकि राज्य सरकार ने घोषित तौर पर, अभी तक कोई अपनी पाठ्यचर्या बनाई नहीं है तथा केन्द्र सरकार द्वारा बनाई गई आखिरी पाठ्यचर्या 2005 में बनाई गई थी, तथा शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है, इसलिए हमारे पास इन किताबों को समझने का एक उपयुक्त आधार वही पाठ्यचर्या व उससे जुड़े दस्तावेज ही बचते हैं।

शुरुआत अगर पाठ्यपुस्तकों की मुंह दिखाई यानी उन्हें सरसरी तौर पर उलट-पुलटने से की जाए तो यह कहा जा सकता है कि इनका आकार ठीक-ठाक है। हालांकि कोई-कोई मुद्रक उस पर अपनी कतरनी चलाकर उनका आकार जरूर छोटा कर देता है। इसका एक नतीजा यही निकाला जा सकता है कि किताबों के आकार संबंधी निर्देश मुद्रकों को या तो दिए नहीं गए या कुछ ने कागज बचा कर पैसा बचाने की कोशिश की है। इन किताबों में गणित के सभी प्रमुख क्षेत्रों से जुड़ी अवधारणाओं को शामिल किया गया है जैसे, संख्याएं, संक्रियाएं, स्थानिक यानी जगह की समझ, मुद्रा/समय, पैटर्न आदि। इनका फोंट साइज भी बच्चों के स्तर के लिहाज से उपयुक्त है। किसी भी किताब के पन्नों पर सामग्री ठूंसी हुई नजर नहीं आती। कक्षा 1 व 2 में किताबों का प्रस्तुतीकरण काफी खुला-खुला है। उनमें चित्र भी कई हैं। चित्रों का इस्तेमाल सिखाने में कितना किया जा रहा है और कितना जगह को बरबाद करने में, यह अलग मसला है। कक्षा 5 तक आते-आते चित्रों की संख्या काफी कम कर दी गई है। ज्यादातर वे मजबूरीवश दिए गए हैं। इसी तरह छपाई भी इस बात पर निर्भर करती है कि किस मुद्रक ने उसे छापा है। कुछ ने उसे ठीक से छाप रखा है तो कुछ पर पाठ्यपुस्तक मंडल का कोई काबू नहीं है। गुणवत्ता के लिहाज से ज्यादातर चित्र औसत हैं व कई जगहों पर तो खराब भी हैं। चित्रों में अगर आप राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत खोजने जाएंगे तो वह नदारद है, हां उसके बारे में प्राक्कथन में उपदेश जरूर अच्छे से बघारा गया है। खराब छपाई वाली पाठ्यपुस्तकों में दिए गए चित्र ठीक से दिखते ही नहीं तो सीखने में मदद क्या खाक करेंगे।

गणित की किसी भी पाठ्यपुस्तक को समझने का एक तरीका यह हो सकता है कि उसमें गणितीय अवधारणाओं के साथ कैसा बरताव किया गया है। इन किताबों को समझने के लिए इनमें ली गई संख्याओं व संक्रियाओं से जुड़ी निम्न लिखित अवधारणाओं व मन-गणित वाले पाठ को लिया गया है।

1. संख्या पद्धति (1-50, कक्षा 1)   2. गुणा (कक्षा 2 से 5)   3. घटाना (कक्षा 2)
4. भाग (कक्षा 2)   5. मनगणित (कक्षा 5)

उपरोक्त अवधारणाओं को चुनने की दो वजहें हैं। पहली, ये सभी गणित के एक अहम क्षेत्र अंकगणित का जरूरी हिस्सा हैं। यह गणित का एक अहम बुनियादी क्षेत्र है जिसकी बुनियाद प्राथमिक कक्षाओं में रखी जाती है। दूसरा, एक लेख में गणित के सभी क्षेत्रों के साथ न्याय कर पाना मुमकिन नहीं था। तो अब हमारे पास प्रमुख सवाल यह है कि क्या ये पाठ्यपुस्तकें गणित के एक क्षेत्र अंकगणित में, बच्चों के सोचने यानी चिंतन करने के तरीके का गणितीयकरण करने के काबिल हैं?

शुरुआत हम कक्षा एक में सिखाई गई एक बुनियादी अवधारणा-संख्या, से करते हैं। संख्याओं को सिखाने के लिए दिए काम कक्षा 1 की पाठ्यपुस्तक में तीन अलग-अलग जगह पर समूहों में दिए गए हैं। पहले 1-5 व 6-10, फिर 10 से 20 और उसके बाद 1-50 तक की संख्याओं को सिखाया गया है। दिए गए कामों का खाका मोटे तौर पर कुछ इस तरह से है।

1. करीब आधे या आधे से ज्यादा पन्नों में चित्र-संख्यांक-संख्यानाम दिए गए हैं।
2. शुरुआती संख्यांकों की नकल करने के अभ्यास दिए गए हैं। ज्यादातर संख्यांकों को क्रम से लिखने के अभ्यास हैं। कुछ अभ्यास बिना क्रम के गिनकर संख्या लिखने के तथा आरंभ में संख्या पढ़कर चित्र बनाने के इक्का-दुक्का अभ्यास दिए गए हैं।

पाठ्यपुस्तक के बनाए गए पाठों के ढांचे से बहुत साफ है कि संख्या की अवधारणाओं को सीखने का एकमात्र तरीका संख्याकों को रटना और रटवाना है। मौखिक और लिखित तरीके से इस किस्म की रटाई करवाने की बहुत मजबूत परंपरा हमारे यहां पहले से ही मौजूद है। मैं इस पद्धति को **प्रदर्शन, दर्शन व कंठस्थीकरण शिक्षण पद्धति** कहूंगा। यानी ये पाठ्यपुस्तकें बच्चों को अवधारणाओं के दर्शन करवाती हैं। इसके लिए पन्ने-दर-पन्ने संख्याओं के पोस्टर से भरे गए हैं। फिर बच्चों से यह उम्मीद करती हैं कि वे उन पन्नों के दर्शन करें और उनमें दी गई जानकारी कंठस्थ करके अभ्यासों में पहले से निगली हुई सामग्री का उपयुक्त जगहों को उगलदान समझ कर उगल दें। इस प्रक्रिया को हम 'उगलीकरण' कह सकते हैं। कंठस्थ करने में 'निगलीकरण' व 'उगलीकरण' दोनों ही शामिल है। यह पद्धति इन पाठ्यपुस्तकों की रग-रग में रचाई बसाई गई है। आगे हम देखेंगे कि यह पद्धति गणितीयकरण की काबिलियत को गणितीय प्रक्रियाओं के जरिए विकसित करने के बजाय इलहामवाद या प्रगटीकरण में पूरा यकीन रखती है। इसे सीखने की **मालगोदाम पद्धति** भी कहा जा सकता है, जिसमें सीखा जा रहा ज्ञान वह माल है जिसे बच्चों को अपने दिमाग के खाली गोदाम में ठूंस-ठूंसकर भरना है और पूछे जाने पर उसे गोदाम से निकालकर ज्यों का त्यों दिखा देना है। उस माल में किसी भी किस्म की टूट-फूट कबूल नहीं की जाएगी।

आइए, हम देखने की कोशिश करते हैं कि किन-किन गणितीय प्रक्रियाओं को विकसित करने में ये पाठ्यपुस्तकें नाकाम रहती हैं। पहला, इनमें संख्या पूर्व अवधारणाओं पर संख्याओं से पहले काम नहीं लिया गया है, जैसे, वर्गीकरण, क्रमिकता तथा एक से एक संगतता, यानी ये संख्याओं के लिए जरूरी पूर्वज्ञान को सिखाना ठीक नहीं मानतीं। दूसरा, इनमें संख्याओं को सिखाते वक्त उनके आपसी संबंधों को दरकिनार कर किया गया है। यानी ये संख्याओं को अलग-अलग अवधारणा की तरह पेश करती हैं संख्याओं के आपसी संबंधों को सिखाने में इसकी कोई रुचि नहीं, जैसे 1 का 2 से संबंध, 2 का 3 से संबंध आदि। तीसरा, ये जिस तरह से एक से नौ तक की संख्याएं लिखना, पढ़ना सिखाती हैं उसी तरह से 10 से आगे की संख्याएं भी सिखा देती हैं। यानी ये 9 व 10 को संख्यांकों में लिखने के तरीके में बुनियादी तौर पर अवधारणात्मक फर्क होने के बावजूद अपने तरीके में बदलाव नहीं करतीं। ये दस व उससे आगे की संख्याओं को अंकों में लिखने का नियम सिखाने से बचती हैं। बच्चों से यह उम्मीद रखती हैं कि बंडल व तीली के चित्र तथा साथ में लिखी संख्या देखकर उनके दिमाग में संख्याओं को लिखने का नियम अपने आप प्रगट हो जाएगा। चौथा, मोटे तौर पर ये पाठ्यपुस्तकें सीखने में सामग्री इस्तेमाल करने के खिलाफ हैं। सीखने में ठोस सामग्री के इस्तेमाल का चलताऊ ढंग से जिक्र भर कर देती हैं।

पांचवां, ये सीखी गई अवधारणा का बच्चों से **दृश्यीकरण व प्रस्तुतीकरण** करवाने के खिलाफ हैं। सिखाते वक्त चीजों के चित्रों को देने का दिखावा करने के बाद और 10 से 20 तक की संख्याएं प्रदर्शन-दर्शन-कंठस्थीकरण की पद्धति से सिखाने के बाद अभ्यास में कहीं भी बच्चों से संख्याओं का दृश्यीकरण नहीं करवातीं। यानी संख्यांकों को पढ़कर उन्हें तीली बंडल या मोती माला के मॉडल में व्यक्त करने के लिए नहीं कहतीं। संभवतः इन्हें अपनी पोल खुलने का जो डर है। छठवां, 40 तक पहुंचते-पहुंचते चित्रों को झाड़-पोंछकर बाहर कर देती हैं और सिर्फ अंकों के जरिए नई संख्याओं को रटवाने का रास्ता अख्तियार कर लेती हैं। सातवां, ये स्थानीय मान के नियम का इस्तेमाल करके संख्या को अंकों में लिखने का तरीका नहीं सिखातीं बल्कि दो संख्यांओं को जोड़कर नई संख्या को लिखकर दिखा देती हैं। इनमें कहीं भी यह नहीं सिखाया या बताया गया है कि दो अंकीय संख्या को लिखते वक्त पहले बंडलों की व उसके बाद खुली तीलियों की संख्या को लिखा जाता है। नवां, सबसे हैरानी की बात तो यह है कि संख्याओं को लिखना सिखाने में दो अंकीय जोड़ की अवधारणा का इस्तेमाल किया गया है जिसे अब तक सिखाया ही नहीं गया है। यानी ऊंचे स्तर की न सिखाई गई दो अंकीय जोड़ की अवधारणा की बुनियाद पर उससे निचले स्तर की नई अवधारणा-संख्याओं को लिखना सिखाने की कोशिश की गई है, जो फिर से बच्चों को रटने पर मजबूर करेगी। दो अंकीय संख्याओं को लिखना सिखाने में दो अंकीय संख्याओं के जोड़ का इस्तेमाल करने से आप रटा तो सकते हैं लेकिन समझाकर नहीं सिखा सकते।

चित्र-1

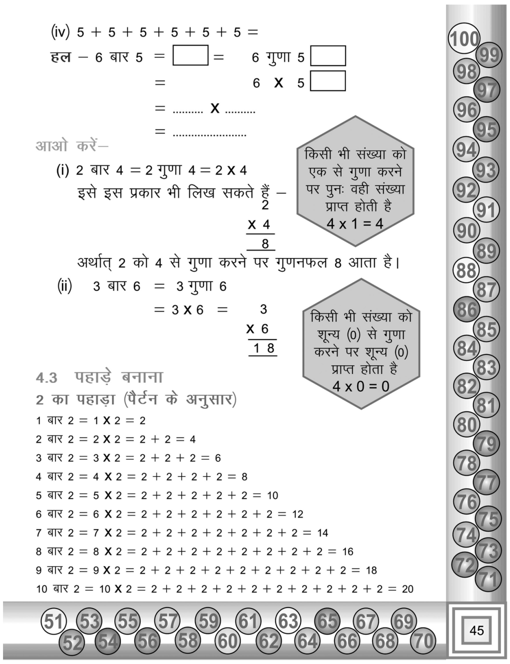

संख्याओं को सिखाने में मौजूद बाकी ढेर सारी दूसरी सभी समस्याओं को यहीं छोड़कर हम आगे गुणा की अवधारणा पर आते हैं। गुणा की अवधारणा कक्षा दो से पांच तक फैली हुई है। चारों पाठ्यपुस्तकों को देखें तो गुणा की अवधारणा को सिखाने के लिए बनाए गए पाठों का ढांचा कुछ इस तरह से बनता है।

1. गुणा की अवधारणा का परिचय (कक्षा दो)
2. एक अंकीय गुणा व 10 तक पहाड़े (कक्षा तीन)
3. 40 तक पहाड़े व दो अंकीय गुणा (कक्षा चार)
4. तीन अंकीय गुणा (कक्षा पांच)

चार कक्षाओं में फैली इस अवधारणा को सिखाने में कई किस्म की समस्याएं मौजूद हैं। हम यहां पर उनमें से गणितीयकरण से जुड़ी चार-पांच प्रमुख समस्याओं को आपके सामने रखने की कोशिश करेंगे।

चित्र-2

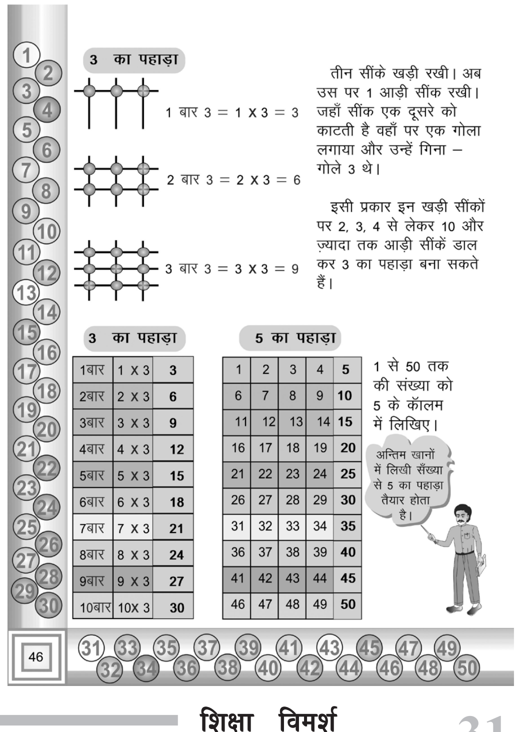

पहली, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के साथ बनाए गए पाठ्यक्रम में गणित की पाठ्यपुस्तकें बनाने के मार्गदर्शक बिंदुओं में से ग्यारहवां बिंदु यह कहता है, ''पैटर्न इस तरह से दिए जाने चाहिए कि बच्चे पैटर्न का अवलोकन करें, सामान्यीकरण करें तथा खुद अपने पैटर्न बनाएं।'' पहाड़ा एक जबरदस्त ताकतवर तथा बहुत ही खूबसूरत पैटर्न है। उसे खुद खोजने व तलाशने का अपना एक आनंद हो सकता है। लेकिन इन किताबों का मकसद गणित के पैटर्नों की खूबसूरती को पहचानना व उन्हें तलाशने से आनंद को महसूस करवाना नहीं है। ऐसा करते ही बच्चों को गणित में आनंद मिलने की संभावना बन सकती है, जो कि ये किताबें हरगिज नहीं चाहतीं। सो ये किताबें एक साथ गुणा के कुछ सवाल लिख देती है जिनमें एक पैटर्न छुपा हुआ होता है, पैटर्न को उसमें से निकालकर दिखाती नहीं और ना ही किताबों में बच्चों

चित्र-3

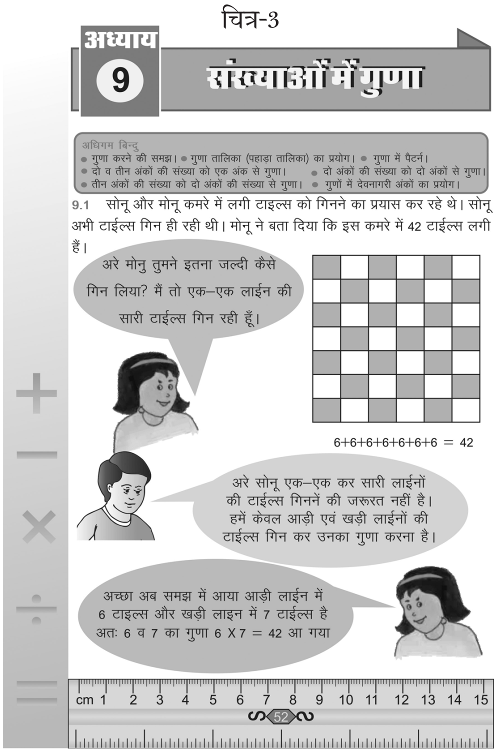

को पैटर्न बनाने के काम के लिए जगह रखती हैं। फिर अगले पन्नों पर धड़ाधड़ आधे अधूरे पैटर्नों के दर्शन करवाने का ढोंग रचती हैं। उसके बाद रेडीमेड यानी पके-पकाए पहाड़े किताब में ही परोस देती हैं। बना बनाया हलवा खाने में जो आनंद है वो हलवा बनाकर खाने में कहां जनाब! बनाने में तो मेहनत करनी पड़ती है और हमारे देश में पारंपरिक तौर पर पढ़ने-लिखने वालों के लिए शारीरिक मेहनत करना शर्म ही नहीं घृणा का भी बायस रहा है। अगर आपको अब भी इस तरीके में महान भारतीय जातिवाद की बदबू नहीं आती है तो आपको अपनी नाक की जांच जरूर करवा लेनी चाहिए। ये पाठ्यपुस्तकें उम्मीद करती हैं कि सवालों के जरिए पैटर्न का प्रदर्शन कर दिया गया है, अब बच्चे उसका ध्यान से अवलोकन करें तो पैटर्न की रोशनी उनके दिमाग में खुद ब खुद झिलमिलाने लगेगी (अगर रोशनी नहीं झिलमिलाई तो दोष बच्चों का है, सरकार और किताब बनाने वालों का नहीं), उन्हें गणितीयकरण करने की प्रक्रियाओं में अपना सिर खपाने या घिसने की कतई जरूरत नहीं। यानी फिर से इनमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की मूल भावना से उलट, प्रदर्शन, दर्शन तथा कंठस्थीलकरण वाला तरीका नजर आने लगता है, जिसमें कभी-कभी अर्थ के प्रकट हो जाने की संभावना भी रहती है।

दूसरी, इन किताबों में मौखिक गणना की रणनीतियों को नीची नजर से देखने की प्रवृत्ति कई जगह साफ झलकती है। जैसे, 7 रुपए की 6 कापियां खरीदने वाले सवाल में पहाड़ों के बजाय जोड़-जोड़कर हिसाब लगाने वाली रितु को दिशु झिड़ककर कहती है कि तुझे पहाड़े नहीं आते क्या। ले तुझे मैं पहाड़ा बनाना सिखाती हूं (चित्र-4)। यहां पर पाठ्यपुस्तक 70 में से 28 घटाकर, 35 में 7 जोड़कर, 14 व 14 मिलाकर 28 तथा उसमें 14 मिलाकर 42 बनाने की रणनीतियों को सिखाने के मौकों को गंवा देती है। यह काम मौखिक भी करवाया जा सकता था व लिखित भी। लेकिन इसके लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की दो-तीन मान्यताओं पर भरोसा करना पड़ता। पहली, किसी समस्या को अनेक तरीकों से हल किया जा सकता है व दूसरी, उन सभी तरीकों का गणितीय निरूपण किया जा सकता है, व तीसरी, विद्यालय के ज्ञान को बाहर के ज्ञान से जोड़ना चाहिए। साफ है प्राक्कथन में शिक्षकों से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की मूल भावना को आत्मसात करके उसे लागू करने का उपदेश देने वालों के लिए इन तीनों ही बातों की हैसियत एक चलताऊ जुमले से ज्यादा नहीं है, जिसे सिर्फ दिखावे के लिए बोला या लिख दिया जाना है।

चित्र-4

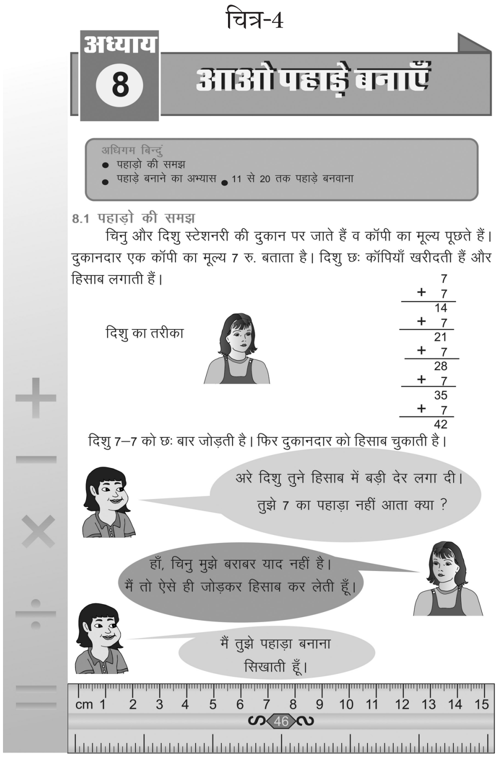

एक पन्ने पर दिए गए इस सवाल के हल व वार्तालाप में यह बहुत साफ है कि गुणा के सवालों को हल करने के लिए पहाड़ों का न आना निकम्मों की पहचान है जो इतना सा पहाड़ा भी याद नहीं कर सकते। सवालों को हल करने का एकमात्र सही तरीका पहाड़ों का इस्तेमाल करना है। इसी किस्म की अवमानना जनक बातचीत आप कक्षा 4 के ही भाग तथा धारिता के पाठ में पहले पन्ने पर भी देख सकते हैं।

तीसरा, क्षेत्रफल के मॉडल की मदद से गुणा की अवधारणा का दृश्यीकरण किया जा सकता था व उसे एक अंकीय से दो अंकीय तथा तीन अंकीय गुणा में विस्तारित व विकसित किया जा सकता था। चूंकि किताबें सिर्फ गणनविधि वाले एकमात्र तरीके को ही सही तरीका मानती हैं इसलिए वह बाकी तरीकों को या तो नीचा दिखाकर बाहर कर देती हैं या उन्हें किताब में दाखिल ही नहीं होने देतीं या सिर्फ दिखावे के लिए उन्हें दाखिला देती हैं।

चौथा, किसी गणितीय अवधारणा का भाषा में संप्रेषण करने के लिहाज से किताबें बेहद लचर हैं और इसकी बड़ी वजह पाठ्यपुस्तकें लिखने वालों की खुद की अवधारणात्मक समझ दुरुस्त न होना है। कक्षा 4 में 65 को 5 से गुणा को भाषा में समझाते वक्त इनका अवधारणात्म्क लद्दड़पन व नासमझी तमाम पर्दों की ओट से बाहर झांकने लगती है (चित्र-5)।

चित्र-5

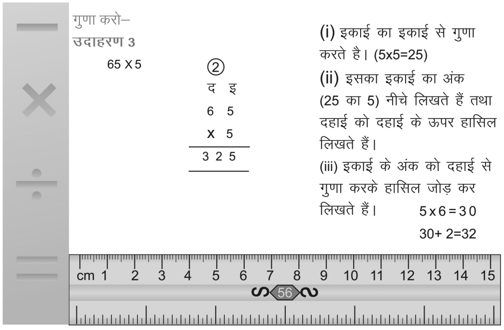

वे 65 का गुणा 5 से करते वक्त, पहले तो 5 इकाई को गुणा 5 इकाई से करवाकर 25 ले आते हैं। यहां पर यह नहीं बताते कि ये 25 क्या हैं। फिर जब 5 इकाई को 6 दहाई से गुणा करवाकर 30 लाते हैं तो फिर से इस बात पर चुप्पी साध जाते हैं कि ये 30 क्या हैं इकाइयां या दहाइयां। फिर इसमें 2 मिलाकर 32 ले आते हैं यहां भी यह नहीं बताते कि ये 32 क्या हैं। फिर इस 32 को दहाई के नीचे न लिखकर 2 को इकाई व दहाई के खाने के बीच में लिख देते हैं और 3 को दहाई के खाने से थोड़ा बाहर। आप कह सकते हैं कि इन किताबों के लेखकगणों ने गणित की संख्या पद्धति में इकाई व दहाई के बीच में एक नए वर्ग यानी नई इकाई की खोज कर ली है, जिसका नामकरण किया जाना अभी बाकी है और जिसके लिए उन्हें गणित की दुनिया के नोबल पुरस्कार कहे जाने वाले फील्ड मैडल से नवाजा जा सकता है। पहली सदी में स्थानीय मान प्रणाली की भारत में खोज होने के बाद इसमें नई खोज बीस सदियों बाद भारत के राजस्थान में ही होनी थी। अवधारणात्मक नासमझी को जाहिर करते हुए अगले ही पन्ने पर इकाई व दहाई के बीच दो नए वर्गों या नई इकाइयों की घोषणा कर दी गई है (चित्र-6)। लो जी अब तो दो बार गणित का फील्ड मैडल मिलना पक्का हो गया। पिछली और इस सदी में पहली बार फील्ड मैडल और वो भी दो-दो ये तो चुपड़ी और वो भी दो-दो वाली बात हो गई। इस सबके बावजूद यह सामग्री बच्चों को स्थानीय मान की मदद से गुणा को समझाने में कामयाब नहीं हो पाती।

चित्र-6

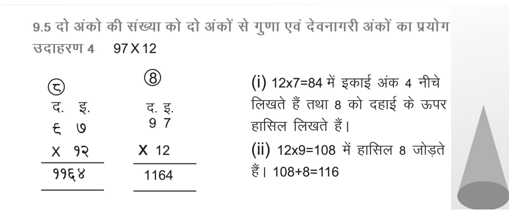

यहां पर फिर से यह याद दिलाना ठीक रहेगा कि एक ही तरीके से हल करना सिखाना सभी सीखने वालों के लिए नुकसानदेह रहता है, गणितीय संप्रेषण ठीक से न तो खुद कर पाना और न बच्चों को अपने शब्दों में संप्रेषण करने के मौके देना, बच्चों के सवालों के हल करने के तरीकों को नीचा दिखाना, ये सभी बातें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की मूल भावना को सिर के बल खड़ा कर देती हैं।

कक्षा 2 में सिखाई गई घटाने की अवधारणा में, 'एक तरीका ऐसा भी' के नाम से मानक गणन विधि सिखाई गई है (चित्र-7)। घटाने की मानक गणन विधि को समझाने के लिए इसमें तीलियां काम में ली गई हैं। इस पन्ने पर दिए गए घटाने के तरीके में भी कई समस्याएं मौजूद हैं। मैं यहां सिर्फ एक बड़ी अवधारणात्मक समस्या की तरफ इशारा करूंगा। इसमें दो अंकीय संख्याओं को घटाना सिखाने का ढोंग रचा जा रहा है। विवरण पढ़ने व चित्रों को देखने से साफ पता चलता है कि असली मकसद एक अंकीय संख्या में घटाना को दर्शाना है। चित्र में दहाई हो या इकाई सभी में एक-एक यानी इकाई की इकाई को दर्शाने वाली तीलियां ही बनी है। दहाई की इकाई को दर्शाने वाली तीलियां तो सिरे से ही गायब है। लिखित विवरण में एक अंक में से एक अंक को घटाया गया है ना कि पहली संख्या में से दूसरी संख्या को। आप लेखकों की तर्क संगतता की दाद ही दे सकते हैं कि वे गलती भी तर्क संगत तरीके से करते हैं। यानी जैसा भाषा में लिखते हैं वैसा ही चित्र बनाते हैं। यह गणन विधि का वह रूप है जिसमें अर्थ को पूरी तरह से नजर अंदाज करके सिर्फ और सिर्फ तकनीकी तौर पर घटाना सिखाया जा रहा है और उसके लिए अवधारणा का सिर-पैर आदि को बुरी तरह से तोड़ा-फोड़ा जा

चित्र-7

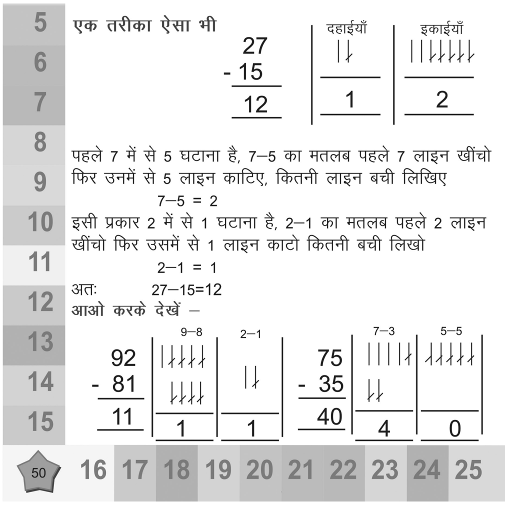

चित्र-8

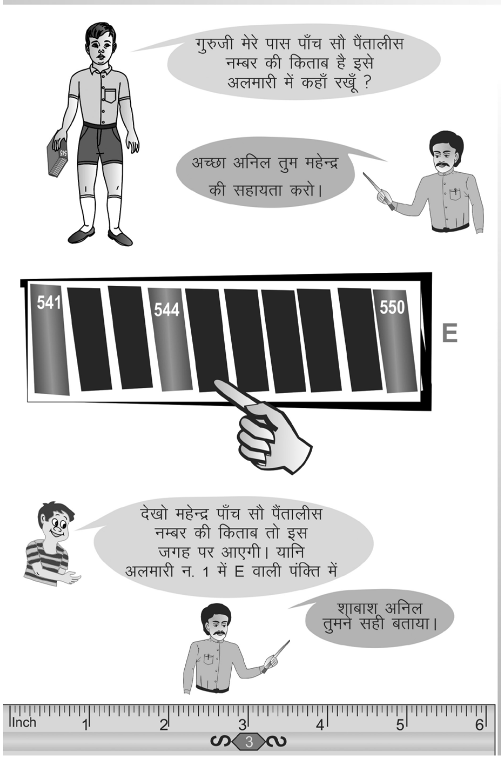

रहा है। आप भी अवधारणा का यही हश्र करना चाहते हैं तो शौक से अपनी जिम्मेदारी पर इसका इस्तेमाल करें।

आप देख सकते हैं कि बार-बार ये पाठ्यपुस्तकें गणितीयकरण की प्रक्रियाओं को ठीक से सिखा पाने में बुरी तरह से नाकाम रहती हैं और नतीजे में बच्चों के सोचने व चिंतन करने के तरीकों का गणितीयकरण करने में भी।

ये पाठ्यपुस्तकें गणितीयकरण के किस कदर खिलाफ हैं इसे आप यहां दिए तीन चित्रों (चित्र-8, 9 व 10) से भी समझ सकते हैं।

आप देख सकते हैं कि पहले चित्र में महेन्द्र के सामने जवाब जादू के जोर से प्रगट होता है। पन्ने में ऐसी कोई गणितीय प्रक्रिया होती नजर नहीं आती, जिसकी मदद से जवाब निकाला जा सके। नौवें और दसवें चित्र में आप देख सकते हैं कि पहले तो लड़का बिना गिने बता देता है कि कुल 15 लड्डू हैं। फिर लड़की न पूछे गए सवाल का जवाब देती है। फिर शिक्षिका सवाल बोलती है और जवाब थालियों में हकीकत में परोसा हुआ है। अपनी अक्ल का धेला भर भी खर्च किए बगैर वही लड़की थाली का दर्शन करके जवाब बता देती है। जवाब की अजीब-सी भाषा पर गौर मत कीजिए। अगले पन्ने पर (चित्र-10) फिर शिक्षिका सवाल पूछती है और जवाब चित्र में दिखाई थाली में प्रगट हो जाता है। लड़का थाली के दर्शन करते हुए मुस्कुरा कर जवाब दे देता है। इन दोनों पन्नों को आप चाहे जितनी बार, चाहे जितना गौर से पढ़ जाइए, अगर आपको जवाब निकालने की गणितीय प्रक्रिया कहीं रत्ती भर भी नजर आ जाए तो आप कम से कम एक लड्डू के हकदार तो अपने को मानकर बाजार से खरीद कर खा ही सकते हैं। इस पूरी जद्दोजहद से आप इस नतीजे पर जरूर पहुंच सकते हैं कि जो जवाब प्रदर्शन के दर्शन से मिल सकता है उसके लिए किसी गणितीय प्रक्रिया की जरूरत ही कहां।

चित्र-9

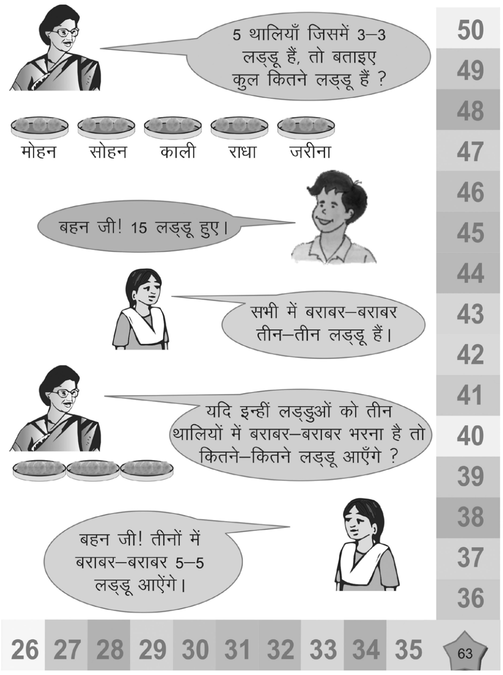

कक्षा 2 व कक्षा 5 के आखिर में मन-गणित नाम से पाठ दिया गया है (चित्र-11)। इस पाठ में भी बहुत सारी समस्याएं है लेकिन फिर से मैं आपका ध्याान एक और प्रमुख समस्या की तरफ खींचना चाहूंगा। यह पन्ना समस्या समाधान करवाना चाहता है लेकिन समस्या समाधान के जरिए तार्किक चिंतन का विकास करना इसे फूटी आंखों नहीं सुहाता।

सवाल का हल निकालने के लिए पाठ्यपुस्तक एक लड़की से इस तरह विचार करवाती है, ‘‘पहली संख्या 72 है और दूसरी संख्या 50 से कम है इसलिए उसकी जोड़ 145 नहीं हो सकती।’’ इस पूरी बात में सिर्फ पहली बात में दी गई संख्या का पता तो सवाल देखकर चल जाता है। लेकिन दूसरी संख्या के बारे में उसे कैसे पता चला कि वह 50 से कम है। पाठ्यपुस्तक इस बात को पूरी तरह से गोल कर जाती है कि क्यों 4 से आरंभ होने वाली दो अंकों की संख्या 50 से छोटी ही होगी। इसी तरह लड़की के दिमाग में ऐसा कोई तर्क पैदा नहीं होता जिसकी मदद से वह इस नतीजे तक पहुंच सके कि 72 व 50 मिलकर 145 नहीं हो सकते। यानी पाठ्यपुस्तक बुनियादी तर्कों व तथ्यों को भाषा में व्यक्त किए बगैर लड़की को ऐसे नतीजे पर पहुंचा देती है जिसके लिए बुनियादी तर्क उसने गढ़े ही नहीं। ऐसा ही कारनामा लड़के द्वारा किए गए तर्क में भी किया गया है। आप देख सकते हैं कि ये पाठ्यपुस्तकें व्यवस्थित तरीके से तर्क करने को सिखाने के नाम पर किस किस्म का रायता फैला देती हैं।

आखिर में, तीन चार चीजों पर भी आपका ध्यान खींचना चाहूंगा। पहली, इन पाठ्यपुस्तकों में न तो अवधारणाओं को ढंग से सिखाया गया है, न ही इनमें अभ्यास पर्याप्त मात्रा में हैं। यानी न तो ये अवधारणात्मक समझ विकसित कर पाने के काबिल हैं और न ही रटवाकर अवधारणाओं की गणन विधि का अभ्यास करवाने के काबिल हैं। यानी इन किताबों में गणित की हालत धोबी के कुत्ते की सी कर दी गई है। जिसे मशीनी अभ्यास के घर से तो बाहर खदेड़ दिया गया है और जिस-जिस घाट पर उसे भेजा जा रहा है वहां अनुभव से ज्ञान निर्माण करने यानी पीने लायक पानी नहीं है। दूसरी, इसमें हर पन्ने की सरहद में दिए गए चित्र भी इस बात का सबूत देते हैं कि ये किताबें किस कदर हड़बड़ाहट में बनाई गई हैं। कक्षा 1 की किताब बनाते वक्त तो फिर भी थोड़ा वक्त लगाकर सरहद पर दिए गए चित्रों को चुनने में विचार किया गया और अलग-अलग अवधारणाओं के पाठों के साथ अलग-अलग चित्र चुनने की मेहनत की गई। उन चित्रों का इस्तेमाल उन पन्नों पर दी गई अवधारणाओं को समझने-समझाने में किया जा सकता है। लेकिन कक्षा 2 व 3 में उन्होंने 1 से 50 तक व 1 से 100 तक के संख्यांक चुने और काटो व चेपो की तकनीक से पूरी किताब के हर पन्ने की सरहद पर लगा दिए। कक्षा 4 व 5 में उन्होंने पूरी किताब के हर पन्ने की सरहद पर संक्रियाओं के निशान व कुछ ज्यामितीय आकृतियों का इस्तेमाल किया है। कक्षा 4 के आधे पाठों में एक पैटर्न या लटकन का चित्र हर पन्ने पर लगा रखा है। एक-आध पाठ और ऐसे है जहां उन्होंने सरहद में चिपकाई जाने वाली चीज बदली है। कक्षा 5 की किताबों में संक्रियाओं के निशान सरहद पर लगाना जगह की बरबादी करने से ज्यादा कुछ नहीं है (चित्र-11)।

चित्र-10

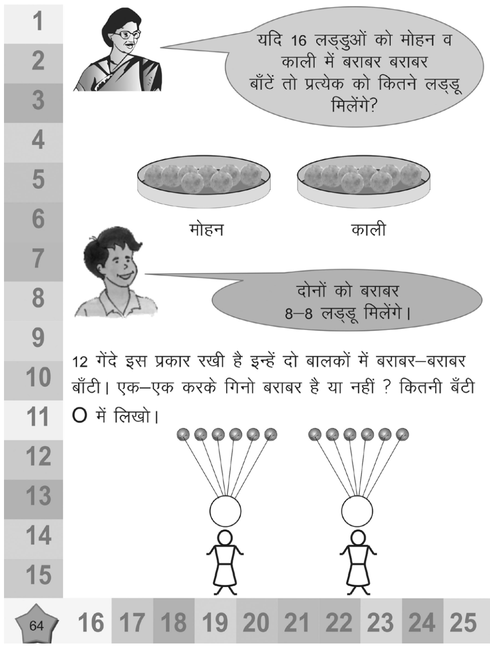

तीसरी बात, ऐसा लगता है कि देवनागरी लिपि के संख्यांकों को लेकर पुस्तक निर्माताओं के सर पर कोई खब्त सवार है। एक तो उन्हें लिपि व अंकों में फर्क का नहीं पता। दूसरा, उन्हें शायद यह भी नहीं पता कि जिन अंतर्राष्ट्रीय अंकों का पूरी किताबों में इस्तेमाल किया गया है उनका एक नाम भारतीय-अरबी अंक भी है क्योंकि एक जमाने में वे भारत से अरब की सैर करते हुए पश्चिम में पहुंचे थे। तीसरा, अपनी इस खब्त के हवाले होकर वे एक बार देवनागरी के अंकों से बच्चों को परिचित करवाने के बाद कहीं भी किसी भी अवधारणा के सवालों को देवनागरी में लिख देते हैं। मानो देवनागरी अंक में लिख देने से गणित की अवधारणा जादू के जोर से बच्चों के दिमाग में रोशन हो जाएगी। देवनागरी अंकों का परिचय पहले भी किताबों में दिया जाता रहा है लेकिन इस किस्म की खब्त पिछले बीसेक सालों में पहली बार ही नजर आ रही है।

चित्र-11

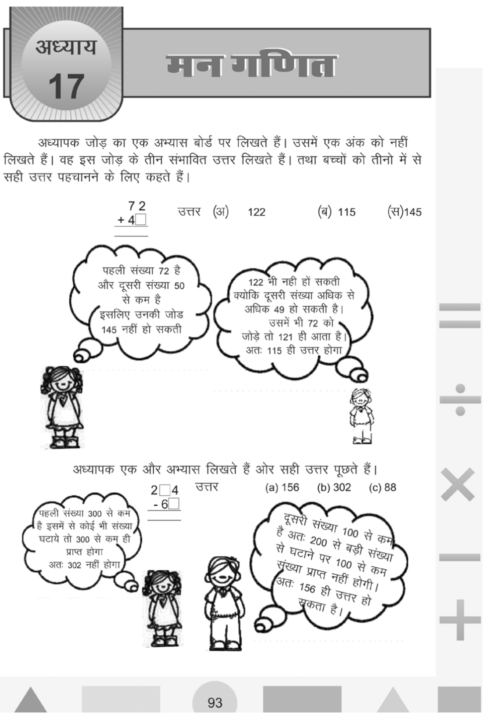

चौथी बात, इन किताबों के लेखक-मंडल में आधे या आधे से ज्यादा ब्राह्मण शामिल किए गए हैं। इनका किताबों में काम ली गई प्रदर्शन, दर्शन व कंठस्थीकरण पद्धति के साथ होना संयोग ही माना जाए या कुछ और!!! जैसे गणित में ऐसी किताबों के जरिए दलितों, लड़कियों, गरीबों, अल्पसंख्यों को गणित की समझ से वंचित रखने की कोई अदृश्य योजना, जिसके सिरे सामाजिक ताने-बाने में गुंथे हैं जो आसानी से दिखाई नहीं पड़ते।

आखिरी बात, पहली बार सरकारी पाठ्यपुस्तकों में जबरदस्ती वैदिक गणित के नाम पर टोटकेबाजी को ठूंसा गया है। इस गणित के वैदिक होने का कोई प्रमाण मौजूद नहीं हैं। मशहूर गणित लेखक गुणाकर मुले अपने शोधपूर्ण निबंध में लिखते हैं, ''वेद

कभी भी भारतीय गणितज्ञों के प्रेरणा स्रोत नहीं रहे। पहली बार जब 1966 में इस 'वैदिक मैथमैटिक्स' नामक किताब को छापने वाले संपादक डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने उस वक्त के मशहूर भारतीय गणिताचार्य डॉ. बृजमोहन से स्वामी जी के गणितीय सूत्रों के वेदों में होने की जांच करवाई और उनके दावे को निराधार पाया। डॉ. अग्रवाल ने अपनी भूमिका में साफ लिखा है कि ये सूत्र अथर्व वेद के परिशिष्टों में ही देखने को नहीं मिलते... इन सूत्रों की भाषा शैली से पता चलता है कि इनकी खोज स्वामी जी ने स्वयं की थी।'' डॉ. बृजमोहन हिंदी में गणित का इतिहास लिखने वाले पहले व्यक्ति हैं।

वैसे भी वेद गणित के ग्रंथ नहीं और न ही वेदों का विषय गणित है। इसमें सिर्फ कुछ अवधारणाओं से जुड़ी गणनाओं को जल्दी से करने के नुस्खे भर है जिनकी आज के कम्प्यूटर व कैल्कूलेटर के युग में खास जरूरत भी नहीं पड़ती। आप बिना समझे कितना भी तेज गणना कर लें कम्प्यूटर आपसे तेज गति से गणना कर लेगा। वैसे भी कम्प्यूटर से तेज गति से गणना करने वाली भारतीय महिला शकुंतला देवी का गणित में कोई बुनियादी योगदान नहीं। जिंदगी भर वे मजमा लगा कर अपनी इस काबिलियत का प्रदर्शन करने के बावजूद गणित में बुनियादी महत्व का कोई योगदान नहीं कर पाईं। गणित की अवधारणात्मक समझ को विकसित करने में वैदिक गणित रत्तीभर भी योगदान नहीं करती। दूसरों की तो छोड़िए, जिन्होंने इस पाठ्यपुस्तक में वैदिक गणित को बुरी तरह से ठूंसा उनकी अवधारणात्मक समझ का हश्र आप देख ही चुके हैं। जो वैदिक गणित अपने पाठ लिखने वालों की गणितीय समझ को दुरस्त नहीं कर सकती वह दूसरों की समझ को कैसे ठीक कर पाएगी। तीव्र गति से गणनाओं के तरीकों से जुड़ी किताबें दुनिया में और भी पाई जाती है जिन्हें वेद से बाहर खींच निकालने का दावा अभी तक नहीं किया गया है। आप अफसोस ही जाहिर कर सकते हैं कि जिस वैदिक गणित के लेखक को गणित के क्षेत्र का कोई भी जानकार गणितज्ञ नहीं मानता उसे ये पाठ्यपुस्तकें गणितज्ञ के तौर पर मुखपृष्ठ के भीतर पूरे पन्ने पर छापती हैं।

अब तक आप देख ही चुके होंगे कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के जिन मार्ग दर्शक सिद्धांतों को आत्मसात कर उनकी मूल भावना को बच्चों तक पहुंचाने की उम्मीद ये पाठ्यपुस्तकें शिक्षक से रखती हैं, खुद अपने ही हाथों कई फुट गहरी कब्र खोदकर उसके भीतर उन्हीं सिद्धांतों को दफनाने में रत्तीभर भी संकोच नहीं करतीं, गणित में ढपोरशंखीपना या पोंगापंथी शिक्षाशास्त्र इसे नहीं तो और किसे कहते हैं। ◆

संदर्भ

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005, रा.शै.अनु.प्र.प., 2006
2. गणित शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, रा. शै. अनु. प्र. प., 2006
3. गणित का पाठ्यक्रम, रा. शै. अनु. प्र. प., 2006
4. राजस्थान की गणित की कक्षा 1 से 5 तक की गणित की पाठ्यपुस्तकें, राजस्थान पाठ्यपुस्तक मंडल, 2016
5. गणित में झलकती संस्कृति, गुणाकर मुले, राजकमल प्रकाशन, 2006
6. https://kitabat20016.blogspot.in/2016/06/5-17.html
7. https://kitabat20016.blogspot.in/2016/06/2-9.html
8. https://kitabat20016.blogspot.in/2016/06/1-7.html

लेखक परिचयः करीब 21 वर्षों से प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षक शिक्षा, शिक्षण सामग्री एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण, शिक्षाक्रम और अनुवाद के क्षेत्र में कार्य। हाल-फिलहाल विभिन्न संस्थाओं के साथ बतौर शैक्षिक सलाहकार कार्यरत हैं।

सामाजिक विज्ञान

पर्यावरण अध्ययन समाहित

शिक्षा व्यवस्था में विभेदीकरण तेजी से बढ़ रहा है, और इस स्थिति में ज्यादातर लड़कियां, गरीब परिवार के बच्चे, 'निम्न' जाति या अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे ही सरकारी विद्यालयों में आ रहे हैं। अगर वास्तव में शिक्षा के अधिकार को इनके लिए लाभदायक बनाना है तो इन्हें 'ज्ञान आत्मसात' करना नहीं, बल्कि अपने-आप सोचने का मौका उपलब्ध करवाना चाहिए। ...इस शृंखला के प्रत्येक पाठ के अन्त में कुछ अभ्यास प्रश्न दिए गए हैं। अगर हम इनका विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि ज्यादातर सवालों के जवाब सिर्फ पाठ्यपुस्तकों की सामग्री को याद करके ही दिए जा सकते हैं। - यानी इनके जवाब देने में विद्यार्थी को सोचने का कोई मौका नहीं है।

सामाजिक विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तकें

कुमकुम रॉय

हाल ही में (2016) राजस्थान सरकार ने सरकारी विद्यालयों के लिए पाठ्यपुस्तकों की एक नई शृंखला प्रकाशित की है। यह हमारे लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके 'प्राक्कथन' के अनुसार (उदाहरण, सामाजिक विज्ञान, कक्षा-6, पृ. iii), यह 2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा और 2009 के शिक्षा का अधिकार कानून को व्यवस्थित करने का एक प्रयास है। हम यह सोचकर चल सकते हैं कि इस प्रयास की सफलता विद्यालयों में इनके प्रयोग से ही स्पष्ट हो सकती है। लेकिन इसके अलावा भी कुछ सवालों पर चर्चा की आवश्यकता है। इस लेख में मैं इस प्रकार के कुछ बिन्दुओं के प्रति पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करूंगी, जिनके बारे में सोचने की जरूरत है। यहां मैं कुछ उदाहरणों के माध्यम से ही चर्चा को आगे बढ़ाने की कोशिश करूंगी, हालाकि पूरी शृंखला का बारीकी से मूल्यांकन करना आवश्यक है किन्तु यह सीमित परिधि में संभव नहीं है।

पृष्ठभूमि

शुरू करते हैं शिक्षा के लक्ष्यों से। हर किताब के प्राक्कथन में दो परस्पर विरोधी अवधारणाओं का समावेश देखा जा सकता है - एक 2005 की रूपरेखा के अनुसार, ''हमारी सीखने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि बालक स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझकर ज्ञान का निर्माण करे।'' (सामाजिक विज्ञान, पृ. iii)। लेकिन साथ ही हम पढ़ते हैं:

''पाठ्यपुस्तक तैयार करने में यह ध्यान रखा गया है कि पाठ्यपुस्तक सरल, सुगम, सुरुचिपूर्ण, सुग्राह्य एवं आकर्षक हो, जिससे बालक सरल भाषा, चित्रों एवं विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से इनमें उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात कर सकें, साथ ही वह अपने सामाजिक एवं स्थानीय परिवेश से जुड़े तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गौरव, संवैधानिक मूल्यों के प्रति समझ एवं निष्ठा बनाते हुए एक अच्छे नागरिक के रूप में अपने-आप को स्थापित कर सके।'' इसकी तुलना 2005 की रूपरेखा पर आधारित राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) के *सामाजिक विज्ञान - पृथ्वीः हमारा आवास* (2006, पृ. iii), के आमुख से करें:

''हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आजादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना, सामग्री से जुड़कर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तकों को परीक्षा का एक मात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सृजन और पहल को विकसित करने के लिए जरूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएं, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।''

दृष्टियों का फर्क सैद्धांतिक लग सकता है, लेकिन इसको अगर हम बदलती हुई शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में देखें, तो इसके परिणाम के बारे में सोचना जरूरी है। पिछले एक दशक में शिक्षा व्यवस्था में निजीकरण का व्यापक विस्तार नजर आ रहा है - सरकारी शिक्षा संस्थानों की स्थिति पर चर्चा होती रही है। लेकिन सुधार के प्रमाण स्पष्ट नहीं हैं - इस स्थिति में आम तौर से जिनके आर्थिक और सामाजिक अधिकार व क्षमता सबसे सीमित हैं, वे ही सरकारी संस्थानों में प्रवेश करते हैं। विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था में विभेदीकरण तेजी से बढ़ रहा है, और इस स्थिति में ज्यादातर लड़कियां, गरीब परिवार के बच्चे, 'निम्न' जाति या अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे ही सरकारी विद्यालयों में आ रहे हैं। अगर वास्तव में शिक्षा के अधिकार को इनके लिए लाभदायक बनाना है तो इन्हें 'ज्ञान आत्मसात' करना नहीं, बल्कि अपने-आप सोचने का मौका उपलब्ध करवाना चाहिए।

चित्रों का प्रयोग

चर्चा शुरू करते हैं बाल पुस्तकों के एक आवश्यक अंग चित्रों से। इस शृंखला में कई प्रकार के चित्रों का प्रयोग हुआ है। इनमें रेखा चित्र, फोटो, मानचित्र, नक्शा इत्यादि शामिल हैं। अनेक चित्र साफ और आकर्षक हैं लेकिन कुछ चित्र, विशेषकर कक्षा 6 से 8 की पुस्तकों में अस्पष्ट हैं और इनको शैक्षणिक प्रयोग में लाने में समस्याएं होंगी। उदाहरण के तौर पर, कक्षा 6 अध्याय 20 (प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था) को देखें- इसमें तीन मानचित्र हैं (पृ. 143, 145, 147), लेकिन किसी एक को भी देखकर उससे तथ्य निकालना लगभग असंभव है। इस स्थिति में विद्यार्थियों को गद्यांश में दिए गए तथ्यों की ही पुनरावृत्ति करनी होगी।

चित्रों के प्रयोग की एक अन्य समस्या भी है। पर्यावरण अध्ययन, कक्षा 3, पाठ 12 (हमारे गौरव-I) में चार व्यक्तियों के रेखाचित्र हैं- नागार्जुन, जगदीश चन्द्र बोस, भगिनी निवेदिता और महात्मा गांधी। फर्क यह है कि अन्तिम तीन व्यक्तियों के लिए समकालीन फोटो भी उपलब्ध हैं, जिससे हम अंदाजा लगा सकते हैं कि उनके चेहरे कैसे थे। मगर नागार्जुन का चित्र काल्पनिक है - उनके लिए कोई समकालीन चित्र या मूर्ति उपलब्ध नहीं है। विद्यार्थियों के लिए इन दोनों में अन्तर समझना जरूरी है, लेकिन दिए गए चित्रों के आधार पर यह समझ बनाना मुश्किल होगा। इस तरह से ऐतिहासिक परिवर्तनों के बारे में विचार करने का एक अच्छा मौका खो जाता है। इसी तरह सामाजिक विज्ञान, कक्षा 6, पाठ 3 (अंतरिक्ष खोज) में आर्यभट्ट, युनानी दार्शनिक/वैज्ञानिक इराटोस्थनेस और भास्कराचार्य-II के चित्र दिए गए हैं। लेकिन जहां इराटोस्थनेस का चित्र समकालीन मूर्ति कला पर आधारित है, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य के कोई प्राचीन चित्र उपलब्ध नहीं हैं। इससे प्रत्येक संस्कृति/सभ्यता में याद रखने के अलग-अलग तरीकों पर सोचने और समझने का काम किया जा सकता था - कुछ परिस्थितियों में 'वास्तविक' चित्र के माध्यम से जबकि अन्य परिस्थितियों में मौखिक या लिखित माध्यम से व्यक्ति या घटनाओं को याद रखा जाता है - इस विविधता को समझना एक रोचक चुनौती है, लेकिन इसका इस्तेमाल नहीं हुआ। इस प्रकार से शिक्षा के माध्यम के रूप में चित्रों का प्रयोग अधूरा रह जाता है। एक अन्य चित्र जिसका प्रयोग बार-बार नजर आता है (उदाहरण, कक्षा 6 से 8 तक के सामाजिक और राजनीतिक जीवन के अंश के हर पन्ने के हाशिए तथा कक्षा 7 के कवर पृष्ट पर) राष्ट्रीय ध्वज पर आधारित है। इसमें ध्वज के अशोक चक्र के चारों ओर प्रमुख धर्मों के प्रतीक/चिह्न अंकित किए गए हैं। क्या यह सिर्फ कलात्मक है? और क्या राष्ट्रीय प्रतीकों को लेकर इस प्रकार के प्रयोग एक सरकारी पुस्तक का हिस्सा बन सकते हैं?

सवाल और सोच

इस शृंखला के प्रत्येक पाठ के अंत में कुछ अभ्यास प्रश्न दिए गए हैं। अगर हम इनका विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि ज्यादातर सवालों के जवाब सिर्फ पाठ्यपुस्तक की सामग्री को याद करके ही दिए जा सकते हैं - यानी इनके जवाब देने में विद्यार्थी को सोचने का कोई मौका नहीं है। उदाहरण के तौर पर हम कक्षा आठ के *सामाजिक विज्ञान* के पाठ 'राष्ट्रीय सुरक्षा' (पृ. 122) को ले सकते हैं - इसमें पहले सवाल में सही विकल्प चुनना है, दूसरे में स्तम्भों को मिलाना है, तीसरे में रिक्त स्थानों की पूर्ति करना है, चौथे में राष्ट्रीय सुरक्षा के दो भागों को बताना है, पांचवें में सेना के तीन अंग बताने हैं, छठवें में थल सेना की निगरानी में नियुक्त बलों का नाम बताना है, सातवें में उत्तर-पूर्व में नियुक्त बल

का नाम, आठवें में जल सीमा पर नियुक्ति और नवें में देश की सुरक्षा में नागरिकों के पांच कर्तव्य बताने हैं। स्पष्ट है कि सुरक्षा की परिभाषा पर कोई सवाल उठाने व गैर सैनिक माध्यम से सुरक्षा संभव है या नहीं, इस बारे में सोचने की कोई गुंजाइश यहां नहीं है।

एक लोकतांत्रिक नागरिक के लिए सोचने की क्षमता बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके विकास से ही विभिन्न दृष्टियों से अलग-अलग पहलुओं पर चर्चा करना और निर्णय लेना संभव होता है। शिक्षा व्यवस्था और विद्यालय सोचने के तरीके और उसके प्रयोग करना सिखा सकते हैं। लेकिन अगर पाठ्यपुस्तक के हर अध्याय के अंत में सिर्फ इसी प्रकार के सवालों का सामना करना पड़ता हो तो विद्यार्थी का वक्त सही जवाब ढूंढ़ने और रटने में खर्च हो जाएगा, सोचने का अवसर नहीं मिलेगा।

इतिहास की अवधारणा

यह स्पष्ट है कि इस शृंखला के प्रवर्तकों के लिए इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण है। कक्षा तीन के प्राक्कथन से ही 'ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गौरव' की बात की गई है (पृ. iii), और इसकी पुनरावृत्ति हरेक कक्षा के प्राक्कथन में की गई है। इस संदर्भ में दो सवाल महत्वपूर्ण व जरूरी हैं - क्या 'गौरव' की अभिव्यक्ति ही इतिहास का एक मात्र लक्ष्य है? और इस 'गौरव' को हम किन दृष्टियों से देखें और समझें?

'हमारे गौरव' को अगर हम लें, तो इसमें कक्षा तीन में नागार्जुन, जगदीश चंद्र बोस, भगिनी निवेदिता, महात्मा गांधी और बिरसा मुंडा की संक्षिप्त जीवनियां प्राप्त होती हैं, कक्षा चार में चरक, सुश्रुत, रानी दुर्गावती, वीर सावरकर और सरदार पटेल तथा कक्षा 5 में विक्रम साराभाई, होमी जहांगीर भाभा, जिजाबाई, डॉ. भीमराव अम्बेडकर और पण्डित मदनमोहन मालवीय शामिल हैं। स्पष्ट है कि इस तालिका में 'महापुरुषों' का प्रधान्य है, 'महामहिलाओं' की संख्या कम है और मुसलमान या इसाई महापुरुष या महिला की कोई जगह नहीं है। 'महामहिला' बनने के सिर्फ दो तरीके पेश किए गए हैं - या तो वीरांगना बनना या फिर माता या समाज सेविका के रूप में। इसके विपरीत महापुरुष बनने के लिए वैज्ञानिक, राजनैतिक नेता, शिक्षाविद इत्यादि बनने की संभावना है। कक्षा 6 तक आते-आते यह परिधि और भी सीमित हो जाती है - 'शिक्षकों के लिए' (पृ. vii) में बताया गया है कि ''पाठ्यपुस्तक में वीर पुरुषों एवं वीरांगनाओं की जीवनियों को भी बालकों को केन्द्र में रखते हुए सम्मिलित किया गया है।'' गौरव की परिभाषा इस प्रकार से सिर्फ संघर्ष में वीरता प्रदर्शन तक सीमित हो जाती है।

लेकिन इससे भी बड़ा मौलिक सवाल यह है - क्या हम इतिहास को सिर्फ कुछ गिने-चुने व्यक्तियों की उपलब्धियों से समझें, या इसकी गहराई में प्रवेश करने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करें? जीवनी ही अगर हमारे प्रवेश पाठ हैं, तो आम व्यक्तियों के जीवन के बारे में हम क्या जानते हैं और कैसे? आम आदमी (और औरत) का इतिहास भी रोचक हो सकता है - और इसको जानना इसलिए आवश्यक है क्योंकि अगर हम लोकतांत्रिक दृष्टिकोण से बहुसंख्यक लोगों की गिनती करने की कोशिश करें तो अमर्त्य सेन (Argumentative India, P. 55) के शब्दों में, बहुसंख्यक वही हैं जो आर्थिक दृष्टिकोण से निम्न या मध्यम वर्ग के हैं, यानी कम से कम कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत लोग जिनके पास पूंजी नहीं है, जो ग्रामीण इलाकों में रहते हैं और जो धार्मिक असहिष्णुता का विरोध करते हैं। पिछले कुछ दशकों के ऐतिहासिक शोध से इन वर्गों के बारे में काफी जानकारी उपलब्ध है - एनसीईआरटी 2005 के आधार पर लिखित इतिहास की पुस्तकों में उनकी झलक है - जहां शिकारी, पशुपालक, छोटे किसान, आम औरत की जिंदगी पर चर्चा है - लेकिन राजस्थान सरकार के इस नए प्रयास में इन्हें इतिहास के पन्नों से लगभग हटा दिया गया - कक्षा 7 की किताब में इतिहास पर दिए 6 अध्यायों में से 2 में सिर्फ युद्ध और योद्धाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

एक अन्य समस्या जो देखने को मिलती है, यह है कि इतिहास की जानकारी कैसे प्राप्त की जा सकती है, इस पर चर्चा का अभाव। कक्षा 6 में इतिहास के स्रोत की एक संक्षिप्त तालिका है, लेकिन इसके बाद, कौनसी जानकारी कहां से और कैसे प्राप्त हुई इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। यानी शायद यह उम्मीद की जा रही है कि विद्यार्थी पुस्तक के सभी तथ्यों को मानकर चलेंगे, इन पर सवाल उठाने का कोई मौका नहीं है।

इतिहास के हर संकलन में कुछ तथ्यों को शामिल किया जाता है और कुछ को छोड़ दिया जाता है। यह इसलिए क्योंकि 'सब कुछ' बताना संभव नहीं होता है। लेकिन तथ्यों का चयन किस आधार पर हो रहा है, इसको समझना और समझाना जरूरी होता है। इस संदर्भ में कक्षा 8 के 'राष्ट्रीय आंदोलन' के अध्याय को देखें - इसमें लाला लाजपत राय, भगत सिंह, हेमू कालानी और सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु पर चर्चा है, लेकिन महात्मा गांधी की मृत्यु का कोई जिक्र नहीं है। इसके बाद के अध्याय, 'आजादी के बाद का भारत' में विभाजन और विस्थापन का उल्लेख है लेकिन विद्यार्थी यह नहीं जान पाएंगे कि लाखों की संख्या में लोगों को भारत छोड़ना पड़ा था - यानी विस्थापन कोई एक तरफा गतिविधि नहीं थी। और ना ही इस संदर्भ में गांधी जी की हत्या का कोई जिक्र है। इस प्रकार के तथ्यों से विद्यार्थी को वंचित करने से उनकी समझ की गहराई बढ़ाना मुश्किल है।

एक अन्य बात भी आश्यर्चजनक है - अब इतिहासकारों ने शोध के माध्यम से स्थापित किया है कि राष्ट्रीय आंदोलन की एक विशेषता थी कि इसमें सभी सामाजिक और आर्थिक स्तर की औरतें आंदोलन में शामिल हुई थीं - किसान से लेकर उच्च वर्ग की महिलाओं तक। लेकिन इनका जिक्र अध्याय में कहीं भी नहीं मिलता। इसी तरह आजादी के बाद के जन आंदोलनों में से सिर्फ चिपको आंदोलन का जिक्र है (उदाहरण, कक्षा 5, पृ. 35) - बाकी आंदोलनों का इतिहास लुप्त है। इनकी जानकारी इक्कीसवी सदी के नागरिक के लिए आवश्यक है। क्योंकि प्रचलित कथन के अनुसार आज विद्यार्थी ही हमारे देश के भविष्य के निर्माता हैं। इसके अलावा तथ्यों को सही रूप से सामने रखने में भी गलतियां हैं। उदाहरण के तौर पर, कक्षा 6, पृष्ठ 114 में हम पाते हैं, ''पत्थर या धातु पत्र पर जो लेख उत्कीर्ण किए जाते हैं, उन्हें शिलालेख कहते हैं।'' शिलालेख का शाब्दिक अर्थ है पत्थरों पर उत्कीर्ण अभिलेख - इसे धातु के लिए प्रयोग करना असंभव है। इस तरह की गलतियां सुधारना आसान है, लेकिन इतिहास के विस्तार को कुछ गिने-चुने व्यक्तियों की जीवनियों तक सीमित करने का प्रयास विद्यार्थियों के प्रति अन्याय है।

समाज की समझ

समाज की समझ बनाना इन पुस्तकों का घोषित लक्ष्य है। उदारहण के तौर पर, 'शिक्षकों के लिए', (कक्षा 3, पृ. vi) में 'जेंडर संवेदनशीलता' पर जोर दिया गया है। लेकिन इस उच्च और कठिन आदर्श को पूरा करने में कई समस्याएं दिखाई देती हैं। एक समस्या है शब्द चयन की - क्योंकि हिन्दी में क्रिया, विशेषण लिंग पर आधारित होते हैं इनके प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से हमारी समझ बना सकते हैं और बदल भी सकते हैं। लक्षित किया गया है कि अनेक जगहों पर पुस्तक में पाठक/पाठिका की 'बालक' के रूप में कल्पना की गई है - (उदाहरण, कक्षा 6, पृ. vii) और शिक्षक/शिक्षिका को शिक्षक या गुरूजी (उदाहरण, कक्षा 6, पृ. 113) कहा गया है। यानी इस दृष्टिकोण से आदर्श विद्यार्थी और आदर्श शिक्षक पुरुष हैं।

लेकिन और भी समस्याएं हैं। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अब एक नारा बन गया है। समस्या यह है कि इसे हकीकत में कैसे बदलें? पाठ्यपुस्तकों में लड़कियों का जिक्र कब और कैसे आता है, इस पर विचार करना आवश्यक है। कक्षा 6 (पृ. 5) में एक बेटी के जन्म पर उसे, 'प्यारी-सी गुड़िया' कहा गया है। बेटी के जन्म पर खुशी जताना अच्छी बात है, लेकिन बेटी को गुड़िया की तरह समझना उसके व्यतित्व के विकास के लिए हानिकारक हो सकता है। इस दिशा में आगे बढ़ते हुए, 'खेल-खेल में' नामक पाठ में (कक्षा-3, पाठ-3) चार चित्रों में से सिर्फ एक में लड़की को बाहर खेलते हुए दिखाया गया है। दल बनाकर खेलने का हक क्या सिर्फ लड़कों का है? यही स्थिति कक्षा 4 (पाठ 5, 'खेल प्रतियोगिता') में भी देखने को मिलती है। कक्षा 5 (पाठ-5, आओ! खेलें-खेल) में सबसे पहली बार लड़कियों को व्यापक रूप में दिखाया गया है (पृ. 24)। लेकिन खेलते हुए नहीं, सूर्य नमस्कार करते हुए।

इन विवरणों और चित्रों से लड़कियों व लड़कों के बीच लिंग विभाजन और अन्तर का 'आदर्श' रूप स्पष्ट हो जाता है। यही दृष्टिकोण छोटे-मोटे सवालों में भी दिखाई देता है। कक्षा 4 (पृ. 123) में सवाल हैः ''आपके पिताजी काम पर किस साधन से जाते हैं?'' क्या यही सवाल माताजी के बारे में भी नहीं पूछा जा सकता था? शायद इस पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है, कि माताजी दाल पकाती हैं, लेकिन पिताजी दाल खराब हो जाने का वैज्ञानिक कारण बता सकते हैं। (कक्षा 5, पृ. 77-78)

कक्षा 7 (अध्याय 10, लैंगिक समझ और संवेदनशीलता) इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इसमें नारी को गृह लक्ष्मी कहा गया है (पृ.76), इतिहास का एक संक्षिप्त वर्णन दिया गया है, जिसमें मध्यकाल को अंधेरे युग के रूप में दिखाया गया है, जबकि प्राचीन काल को महिलाओं के लिए गौरव का समय माना गया है। नारीवादी इतिहासकारों ने इन अवधारणाओं का खण्डन कई दशकों से किया है और दर्शाया है कि लिंगों का इतिहास जटिल है - इसे वर्ग, वर्ण व्यवस्था, धर्म, प्रादेशिक अन्तर के संदर्भ में ही समझना चाहिए। लेकिन इस प्रकार के शोध की झलक इस पुस्तक में देखने को नहीं मिलती है। इसके विपरीत 19वीं सदी के उपनिवेशवादी इतिहासकार, जेम्स मिल की तरह इस पुस्तक शृंखला में भी इतिहास शासक वर्ग के धर्म के आधार पर हिन्दू और मुस्लिम इतिहास में विभाजित किया गया है। और भी खतरनाक है लिंग भेद की परिभाषा - जिसमें स्त्री और पुरुष के बीच के प्राकृतिक अन्तर को इसका आधार माना गया और मातृत्व को ही औरतों के प्रमुख परिचय के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया गया है। नारीवादी चिंतकों ने दिखाया कि तथाकथित 'वैज्ञानिक' आधार पर लिंग विभाजन ही सामाजिक चिंतन से प्रभावित होता है। यह भी सामान्य ज्ञान की बात है कि शारीरिक अन्तर सिर्फ पुरुष और महिलाओं के बीच ही नहीं, पुरुषों के बीच और महिलाओं के बीच भी है। इन शारीरिक अंतरों को सामाजिक असमानता का आधार मानना तर्क संगत नहीं है। तो यह कहना (पृ. 77) ''इस प्रकार का अन्तर सभी जगह और सभी समय समान है'' प्रामाणिक नहीं है।

इसी अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए, कक्षा 8 (पृ. 59) में हम पढ़ते हैं : ''यदि बेटियों को सुरक्षा प्रदान नहीं की गई तो निकट भविष्य में उनकी संख्या कम होने से लिंगानुपात घट जाएगा। इसका समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा एवं शादियों के लिए बेटियों की कमी और महिलाओं के प्रति अपराध जैसी कई समस्याओं का जन्म होगा।'' लक्षित किया गया है कि बेटियों की जिंदगी का कोई स्वतंत्र रूप ही नहीं है, उन्हें तब ही जीने का अधिकार है जब बहु या माता बनें। हालाकि यह समाज में एक प्रचलित धारणा है, शिक्षा का लक्ष्य इसे समर्थन देना नहीं बल्कि इस (और इस तरह की अन्य धारणाओं) पर विचार करना और वयस्क होने पर इसे बदलना है।

अगर इन पुस्तकों के अध्ययन से 'जेंडर संवेदनशीलता' बढ़ाना मुश्किल है तो इनके आधार पर आर्थिक विभाजन और वर्ण या जाति प्रथा को समझना भी लगभग असंभव है। कक्षा 3 (पृ. 120) में ही बताया गया है कि ''व्यक्ति अपनी रुचि एवं कौशल के आधार पर भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं और अपना जीवन यापन करते हैं जैसे - दर्जी, मोची, डॉक्टर, अध्यापक आदि''। कक्षा 6 तक आते-आते यह फॉरमूला रुचि और योग्यता में बदल जाता है (पृ. 61) रुचि और कौशल/योग्यता के अलावा मौके की जरूरत के बारे में बताने की कोई आवश्यकता महसूस नहीं हुई। सामाजिक और आर्थिक संरचना और इनके ढांचे के बारे में जानकारी के अभाव से विद्यार्थी की समझ अधूरी रह जाएगी। यह कक्षा 7 (अध्याय 7, जनसंख्या) से भी स्पष्ट है, जहां बढ़ती जनसंख्या को ही आर्थिक समस्याओं का प्रमुख कारण बताया गया है और हल सुझाया गया है, 'हम दो हमारे दो' यानी छोटे परिवार के आदर्श को अपनाना। इस संदर्भ में पुस्तक में आर्थिक संसाधनों के असमान वितरण पर चर्चा की कोई गुंजाईश नहीं है। अगर विद्यार्थी इस बात को बिना सवाल उठाए मान लें तो समस्याएं स्पष्ट हैं। अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाने के लिए वह अपने-आपको दोषी ठहराएंगे। इस प्रकार से सिर्फ व्यक्तिगत स्थिति पर ध्यान देने से एक जटिल सामाजिक संदर्भ को समझना और उसमें बदलाव लाने का सपना देखने का मौका समाप्त हो जाता है।

इन पुस्तकों में निहित धार्मिक अवधारणाओं के प्रयोग पर भी ध्यान देना जरूरी है। शुरू करते हैं कक्षा 3 से (त्यौहार, पर्व और जयन्ती, पाठ 13) जहां दीपावली के बारे में बताया है, ''इस त्यौहार पर सभी अपने घरों की अच्छी तरह सफाई कर सजावट करते हैं।'' यानी हिन्दुओं के त्यौंहार को ''सभी का त्यौहार' माना गया है, जबकि हिन्दू शब्द का इस्तेमाल नहीं हुआ है। इसके विपरीत ईद को मुसलमानों के साथ और क्रिसमस को इसाइयों के साथ जोड़ा गया है। जैसे जेंडर के संदर्भ में हमने देखा था कि आम विद्यार्थी की कल्पना 'बालक' के रूप में की गई है वैसे ही धार्मिक अन्तर को नकारकर आम विद्यार्थी की कल्पना हिन्दू के रूप में की गई है।

यह अवधारणा कुछ अंश तक विज्ञान की शिक्षा को भी प्रभावित करती है। उदाहरण के तौर पर कक्षा 5 (पाठ 7, वृक्षों की महिमा) में वृक्षों की पूजा का वर्णन मिलता है। उसी तरह से पाठ 24 (पहाड़ों की सैर) में पहाड़ों पर चढ़कर

मंदिर देखने की बात की गई है। इन पाठों में हिन्दू धर्म के अलावा अन्य धर्मावलम्बियों के लिए जगह अत्यंत संकीर्ण और सीमित है।

एक अन्य भाषागत समस्या पर नजर डालना भी जरूरी है। इस शृंखला में कई बार (उदाहरण कक्षा 6, पृ. 65) धर्म और पंथ को समानार्थक शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है। कक्षा 7 (पृ. 75) में सवाल है ''पंथ निरपेक्षता क्या है?'' क्योंकि इन शब्दों का कानूनी और संवैधानिक महत्व है। अगर हम इनके संदर्भ न समझाकर समानार्थक शब्द के रूप में प्रयोग करें तो उनकी समझ में समस्या आ सकती है।

जाति प्रथा पर चर्चा का अभाव भी लक्षित किया गया है। कक्षा 6 में शब्दावली की व्याख्या में (पृ. 63) सामाजिक संस्थाओं की परिभाषा है विवाह, परिवार, जाति इत्यादि। इन सभी को समाज द्वारा मान्य संस्थाएं (''विवाह, परिवार, जाति इत्यादि समाज द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं'') कहा गया है। अगर इस परिभाषा को मान लें, तो जाति प्रथा को चुनौति देना असंभव है। यह भी चिंता की बात है कि नृजातीयता की परिभाषा भी दी गई है (पृ. 69)। यह है, ''मनुष्य की प्रजाति, आर्य, द्रविड़ आदि संबंधी।'' इस प्रकार की संक्षिप्त सूचना से विद्यार्थी को इन जटिल सामाजिक वर्गीकरणों के इतिहास और इनके बारे में सोचने का अवसर नहीं मिलेगा। अन्य परिभाषाओं पर भी सोचना जरूरी है - कक्षा 7 (पृ. 70) में सामासिक संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार है, ''सामासिक संस्कृति का आधार संस्कृत भाषा और साहित्य है जिसमें सहिष्णुता सन्निहित है''। इस परिभाषा में गैर संस्कृत भाषा बोलने और समझने वाले सामाजिक, प्रादेशिक और धार्मिक समुदायों का कोई स्थान नहीं है।

कुछ खिड़कियां

इनके बावजूद, कहीं-कहीं नई दिशाओं की झलक मिलती है। उदाहरण के तौर पर, कक्षा 4, पाठ 2 में एक लड़की की पढ़ाई पर निर्णय लेने की चर्चा है, और निष्कर्ष में उसको आगे बढ़ने का मौका मिलता है। उसी किताब के पाठ 3 (कैसे जानू मैं?) में लिंग शोषण की एक झलक मिलती है, एवं बच्चों को इसके बारे में सचेतन करने का एक प्रयास है - लेकिन उदाहरण यहां एक बालक का है, बालिका का नहीं। क्या इस चर्चा को कक्षा के अन्दर बढ़ाना संभव होगा या क्या लड़कियों के यौन उत्पीड़न की संभावना और अनुभव परदे के पीछे ही रह जाएंगे? या कक्षा 5 (पाठ 3) में दी गई ब्रेल और सांकेतिक भाषा का प्रयोग क्या खास बच्चों के साथ संपर्क स्थापित करने में किया जाएगा? अगर हां तो इस शृंखला पर आधारित पाठ्यक्रम से कुछ सीमित विकास की आशा की जा सकती है।

लेकिन इस शृंखला की मौलिक समस्याओं पर गहराई से सोचने और विचार करने की जरूरत है। यह दुख की बात है कि इन पुस्तकों में भी 'समाज और राजनीतिक जीवन' नामक शीर्षक से एक खण्ड है जो 2005 के राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा पर आधारित पुस्तकों में मौजूद खंड की ही नकल लगता है किन्तु इसके विषय 19वीं और 20वीं सदी के उपनिवेशिक नागरिक शिक्षा के आदर्श से प्रेरित हैं। इनमें नागरिक जीवन की एक संकीर्ण कल्पना उभरकर आती है।

यह पुस्तकें समाज के सबसे वंचित वर्गों के बच्चों के पास पहुंचेंगी, जिनका शिक्षा, समीक्षा और चर्चा करने का मौका सीमित है। उनके प्रति सरकार, सचेतन और सक्षम नागरिकों की एक विशेष जिम्मेदारी है कि उनको आगे बढ़ने का मौका मिले, सोचने का अवसर हो, सवाल उठाने का अधिकार हो। अगर हम उन्हें सिर्फ आज्ञा पालन करना सिखाएंगे, तो यह उनके प्रति नाइंसाफी होगी। इसके लिए सिर्फ सही तथ्य ही नहीं एक तर्क संगत शैक्षणिक ढांचा, जिसमें विद्यार्थी और उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के प्रति सम्मान की भावना प्रकट हो यह आवश्यक है। ◆

लेखिका परिचयः कुमकुम रॉय, ऐतिहासिक अध्ययन के लिए केन्द्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रही हैं एवं वर्तमान में नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय (The Nehru Memorial Museum and Library) में सीनियर फैलो हैं।

धर्मनिरपेक्षता पर प्रहार करतीं पाठ्यपुस्तकें

राजीव गुप्ता

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ी विसंगति उस समय उत्पन्न होती है जब शिक्षा स्वयं में एक हथियार का रूप लेकर सामाजिक विपत्तियों की उत्पति का आधार बन जाए और इन विपत्तियों के विरुद्ध 'प्रतिरोध के कृत्यों' को अवरुद्ध कर दे। शिक्षा को ऐसे हथियार के रूप में राजसत्ता निर्मित करती है ताकि अपने वर्गीय हितों का संरक्षण किया जा सके। यह स्थिति भारतीय समाज में वर्तमान दौर में और अधिक जटिल हुई है क्योंकि ''राज्य का दायां अंग यह नहीं जानता अथवा यह जानना ही नहीं चाहता कि राज्य का बांया अंग क्या कर रहा है'' (पीयरे बुर्दियो : एक्ट्स ऑफ रैजिस्टेन्स, पृष्ठ 2)। यहां बुर्दियो शिक्षकों सहित अनेक सामाजिक श्रेणियों को 'बांये अंग की' की तथा प्रौद्योगिकी विद्, बैंक एवं मंत्रियों आदि को दांये अंग की संज्ञा देते हैं। वर्तमान प्रधानमंत्री द्वारा एक प्राइवेट न्यूज चैनल 'टाइम्स नाओ' को दिया साक्षात्कार इसका प्रमाण है। 29 जून, 2016 को नेहरू मैमोरियल म्युजियम एण्ड लाइब्रेरी में इस संस्थान के अध्यक्ष लोकेश चन्द्रा का कथन कि, 'भारत को बदलना है यह अब नेहरू का विश्व नहीं रहा है' इस कथन की पुनः पुष्टि करता है क्योंकि पिछले वर्ष (2015) में सूचना का अधिकार के अन्तर्गत दायर एक पत्र के उत्तर में वर्तमान सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने कहा कि 'वे नेहरू की विश्व दृष्टि के प्रति प्रतिबद्ध रहना चाहते हैं' (द हिन्दू, 30 जून, 2016, पृ.12)। ये विसंगतियां भारतीय नागरिकों को भ्रम में बनाए रखने का राज्य का प्रयास है ताकि सामाजिक-आर्थिक मुद्दों से ध्यान भटकाकर नव्य उदारवादी आर्थिक ताकतों को स्वयं को और मजबूत करने में कोई कठिनाई न हो। यहां एक प्रश्न या जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न होती है, 'क्या नेहरू के विश्व का न रहना स्वाधीनता संघर्ष के बहुवैचारिक दौर का न रहना है?' साथ ही एक वैचारिकी भी उभरती है कि क्या राज्य ने कॉरपोरेट शक्तियों के सम्मुख समर्पण कर दिया है ताकि समाज में 'हाशिए पर खड़ी जनता' को इन शक्तियों की अधीनस्थता को स्वीकारने हेतु बाध्य होना पड़ें'। पाठ्यपुस्तकों में हो रहे बदलावों (राजस्थान, मध्य प्रदेश हरियाणा, गुजरात आदि) को इन संदर्भों के साथ समझने की जरूरत है क्योंकि यह बदलाव, जो कि कक्षा एक से हो रहा है, एक ऐसी पीढ़ी को निर्मित करेगा जो धुर दक्षिण पंथी (परम्परागत, अस्मिता संस्कृति केन्द्रित, हम बनाम् वे के विभाजन की वैधता, सांस्कृतिक/धार्मिक राष्ट्रवाद केन्द्रित चेतना एवं आक्रामकता) विचारधारा की समर्थक होगी और साथ ही भाग्यवादिता के साथ बाजार कट्टरतावाद के सम्मुख समर्पण करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करेगी।

शिक्षक, पाठ्यपुस्तक, पाठ्यपुस्तक लेखक एवं विद्यार्थी शिक्षा के उस संरचनात्मक परिवेश को निर्मित करते हैं, जिसमें ज्ञान एवं सूचना केन्द्रित कक्षा अन्तःक्रिया का तंत्र आकार लेता है। विद्यार्थी सामान्यतः शिक्षक एवं पाठ्यपुस्तक की विश्वसनीयता को चुनौती नहीं देते अतः प्रेषित ज्ञान व सूचना 'स्थापित ज्ञान व सूचना' का रूप ले लेते हैं। सामान्यतः इन सूचनाओं एवं ज्ञान के पक्षों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वैधता, विश्वसनीयता एवं सत्यापनशीलता की विशेषताओं पर आधारित होना चाहिए। वैचारिकी की विविधता एवं बाहुल्यता की प्रस्तुति पूर्वाग्रहों, घृणा, विद्वेष एवं विभाजनात्मक शैली से इतर हो और शिक्षाशास्त्रीय प्रस्तुति

ऐसी हो कि विद्यार्थी बिना किसी भय के विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प चुनने को स्वतंत्र हो। सृजनशीलता हेतु ऐसा परिवेश स्थापित होने पर शिक्षा का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा का लेखक की दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य हर प्रकार के शोषण से मुक्ति की चेतना का आन्तरीकरण एवं इस हेतु लोकतांत्रिक जन आन्दोलनों में सजग सहभागिता की स्वीकृति है। परन्तु पिछले दो वर्षों में (हालांकि ऐसे प्रयास पूर्व में भी हुए हैं) धार्मिकता पर केन्द्रित हिन्दू जीवन दर्शन एवं हिन्दुत्व का राजनीतिक एजेण्डा जिसमें (धार्मिक) असहिष्णुता सम्मिलित है का प्रवेश राजसत्ता के द्वारा शिक्षा, संस्कृति, राजनीति, अर्थतंत्र, व्यक्तित्व विकास के मनोविज्ञान आदि प्रणालियों में तीव्र गति से हुआ है। परिणामस्वरूप संकीर्णतावाद, साम्प्रदायिकता, कट्टरतावाद एवं हिंसा को वैधता प्राप्त हुई है। पाठ्यपुस्तकों में इस प्रभाव को हम स्पष्ट रूप में देख सकते हैं जहां हिन्दुत्व की गौरवशाली प्रस्तुति है और शेष के साथ स्पष्ट एवं छिपे हुए पूर्वाग्रह एवं घृणाभाव हैं। पाठ्यपुस्तकों में निहित अन्तर्वस्तु के मूल्यांकन में हमें सावधानीपूर्वक निम्नलिखित पक्षों की पड़ताल भी करनी चाहिएः

1. लैंगिक अस्मिताओं की प्रकृति, 2. प्रजातीय व जातीय सवालों के स्वरूप, 3. शोषण, दमन एवं असमानताओं की उपस्थिति, 4. लोकतांत्रिक असहमति संबंधी दृष्टिकोण

इन पक्षों की पड़ताल इसलिए आवश्यक है क्योंकि कक्षा एक से कक्षा बारह तक शिक्षा के माध्यम से हुआ समाजीकरण व्यक्तित्व में ऐसे 'स्थाई भाव' स्वाभाविकता के साथ विकसित करता है जिनमें जीवन पर्यन्त बदलाव की सम्भावनाएं कम हैं। हम इसे एक सीमा तक 'मतारोपण' की संज्ञा दे सकते हैं। राजसत्ता इस कारण शिक्षा एवं शिक्षाशास्त्र को अपने एजेण्डा में महत्व देती है हालांकि अपनी लोकतांत्रिक छवि को बनाए रखने की कोशिश में वह 'शिक्षा की स्वायत्तता' का व्यापक समर्थन करती है। अतः शिक्षक, लेखक एवं सजग नागरिक को विद्यार्थी को केन्द्र में रखकर यह जानना होगा कि सूचना एवं ज्ञान के सृजन, पुनरुत्पादन एवं वितरण में किन पक्षों का समावेश हो रहा है तथा किनको बाहर किया जा रहा है या बाहर करने को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कहा जा रहा है। प्रयासों का यह संगठित समुच्चय शिक्षा के वर्गीय स्वरूप से जुड़े राजनीतिक अर्थवाद को समझने में सहायक है। पर इस विषय पर इस आलेख में चर्चा लेखक का ध्येय नहीं है।

इस पृष्ठभूमि के साथ हम कक्षा छहः से कक्षा ग्यारह तक की समाज विज्ञान की उन कुछ पुस्तकों के विश्लेषण का प्रयास करेंगे, जिन्हें राजस्थान की वर्तमान राज्य सरकार के निर्देशों पर प्रकाशित किया गया है। भाजपा शासित सरकारों द्वारा इस तरह के प्रयास अपने-अपने शासित राज्यों में किए जा रहे हैं। हालांकि इन प्रयासों को एक-दूसरे के राज्यों में लागू किया जाएगा। उदाहरण के लिए हरियाणा के शिक्षा राज्य मंत्री का मत है कि जनसंघ के संस्थापक श्यामाप्रसाद मुखर्जी, वीर सावरकर, गीता एवं विभिन्न धर्मों की 'पवित्र पुस्तकों' को मूल्य शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को पढ़ाया जाएगा। व्यक्तित्व विकास हेतु जीवन में 'सूर्य' की भूमिका एवं राष्ट्रवाद तथा देशभक्ति की भावना के उभार हेतु नैतिक कर्त्तव्यों की शिक्षा दी जाएगी। राज्य सरकार के इन प्रयासों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्पष्ट व प्रभावी सहभागिता है। नैतिक या मूल्य शिक्षा की इन पुस्तकों को भाजपा शासित अन्य राज्यों में भी प्रारम्भ किया जाएगा (द हिन्दू, पृ. 7, 30 जून, 2016)। राजस्थान के शिक्षामंत्री ने भी अकबर महान या महाराणा प्रताप महान और पुस्तकों में किन्हें सम्मिलित करें और किन्हें बाहर करें की बहस को जन्म देकर घोषित किया कि विषय संरचना को शिक्षकों के समूहों के स्थान पर राजसत्ता निर्धारित करेगी। मध्य प्रदेश व गुजरात में भी राजसत्ता के निर्देशों से शिक्षा का स्वरूप संचालित हो रहा है। ऐसी स्थिति में पाठ्यपुस्तकों के गहन मूल्यांकन की कोशिशें स्वयं में एक 'चेतना आन्दोलन' बन सकती हैं।

राजस्थान की वर्तमान राज्य सरकार जो कि भाजपा द्वारा निर्मित है, एक कथित 'धार्मिक-सांस्कृतिक राष्ट्रवादी विचारधारा की पोषक है जिसमें (1) अनेक मिथकों को एतिहासिक वास्तविकता बताया जाता है (2) संस्कृत के प्रभुत्व से निर्देशित जटिल हिन्दी को लेखन में प्राथमिकता देकर इसे लोकप्रिय (जन) हिन्दी से पृथक किया जाता है (3) प्राचीन (हिन्दू) भारत सर्व श्रेष्ठ है और तत्कालीन विश्व सभ्यताओं से न केवल बहुत आगे हैं अपितु मार्ग दर्शक है (4) मध्य युगीन भारत 'डार्क एज' है जो समस्त समस्याओं को जन्म देती है तथा (5) स्वाधीनता संघर्ष में कांग्रेसी

व वामपंथी भूमिका की उपेक्षा है, के तत्व सम्मिलित हैं। इस धार्मिक-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में हिन्दू (आर्य) भारत के मूल निवासी हैं और वे सर्वश्रेष्ठ व्यवस्थाओं एवं प्रौद्योगिकी के सृजक हैं। राज्य सरकार ने सांस्कृतिक-धार्मिक राष्ट्रवाद के इस स्वरूप को कक्षा एक की पुस्तकों से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे विस्तार दिया है ताकि उस 'एजेण्डा' को व्यक्तित्व का भाग बनाया जा सके, जिसमें 'हम' अर्थात् हिन्दू बहु-संख्यक सर्वश्रेष्ठ है और 'वे' विशेषतः मुसलमान (इस्लाम) शोषण, दमन, असमानता एवं अन्याय केन्द्रित व्यवस्थाओं को भारत में निर्मित करते हैं। यही 'अंधकार का युग' है जिसे औपनिवेशिक एवं उत्तर औपनिवेशिक भारत में धर्मनिरपेक्षता के मूल्य द्वारा संरक्षण दिया जा रहा है। वामपंथ व नेहरू इस संरक्षण के केन्द्र में हैं। अतः इस संरक्षण को समाप्त करने हेतु पुस्तकों में बदलाव तथा व्यक्तित्व में शौर्य एवं आक्रामकता के भावों का समावेश अनिवार्य है। बच्चे चूंकि प्रारंभ में बिना किसी बहस के इस शिक्षण का आन्तरीकरण कर लेंगे अतः इन पुस्तकों में अप्रत्याशित रूप से तत्काल परिवर्तन या संशोधन कर दिए गए। यह एक चौकाने वाला तथ्य है कि इन पुस्तकों के प्रकाशन में 'यूनिसेफ' ने वित्तीय एवं तकनीकि सहयोग दिया है। 'यूनिसेफ' अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं बाहुल्यता मूलक संस्कृति के समर्थन एवं संरक्षण का दावा करती है। शायद 'यूनिसेफ' ने पुस्तकों की अन्तर्वस्तु की उपेक्षा की है। हालांकि इन पुस्तकों के पूर्व की पुस्तकों के प्रकाशन में 'आई.सी.आई.सी.आई फाउण्डेशन फॉर इन्क्लूसिव ग्रोथ' संस्थान की प्रमुख भूमिका थी। क्या इन भूमिकाओं को 'शिक्षा के व्यवसायीकरण' के कुछ पहलुओं से जोड़ा जा सकता है?

चूंकि सामाजिक विज्ञान के अनेक पक्ष सामाजिक विज्ञान की पुस्तकों के इतर पुस्तकों में भी अभिव्यक्त होकर समाज के बोध को उभारते हैं अतः इस आलेख में ऐसी कुछ पुस्तकों को भी विश्लेषण में सम्मिलित किया गया है। समाज की प्रकृति को समझने की कोशिश इस विश्लेषण का एक लक्ष्य है।

सत्र 2015-16 की आठवीं कक्षा की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक की तुलना सत्र 2016-17 हेतु प्रकाशित नवीन पुस्तक से करें तो कुछ प्रश्न उभरते हैं जो विषय विश्लेषण से भिन्न हैं:

1. क्या ये नवीन पुस्तक पूर्व पुस्तक का संशोधित रूप है? यदि हां तो पूर्व पुस्तक के लेखकों की इसमें चर्चा (भले ही आभार व्यक्त करने को हो) क्यों नहीं है और यदि ये नवीन पुस्तक है तो पूर्व की पुस्तक की अन्तर्वस्तु की अनेक स्थानों पर पुनरावृत्ति या केवल भाषाई बदलाव के अन्तर्वस्तु को प्रस्तुत करना 'अकादमिक अनैतिकता' नहीं है?

2. पूर्व की पुस्तक की संरचना के निर्माण में पचास शिक्षा एवं अशैक्षणिक कर्मियों का योगदान है जबकि वर्तमान पुस्तक में केवल 28 कर्मियों का योगदान है। इन कर्मियों की विशेषतः शिक्षा कर्मियों की संख्या को क्यों कम किया गया?

3. इन नवीन पुस्तकों की पठन सामग्री को तैयार करने में पूर्व पुस्तकों की तुलना में कितना समय लगा? इन नवीन पुस्तकों में उन स्रोतों (संदर्भ पुस्तकों आदि) के उल्लेख क्यों नहीं हैं जहां से सूचना एवं अध्ययन सामग्री को संकलित किया गया है? तथा

4. इन पाठ्यपुस्तकों के लेखकों अर्थात् विषय निर्माण समिति की रचना का आधार क्या था? इस निर्माण प्रक्रिया में राजस्थान के बाहर के लेखकों एवं राजस्थान के विभिन्न जिलों, जिनकी संख्या 33 है, में से कितने जिलों के शिक्षकों को सम्मिलित किया? इन सवालों के साथ एक अन्य सवाल भी पूछा जाना चाहिए कि इतना शीघ्र पुस्तक परिवर्तन क्यों आवश्यक था और इस शीघ्रता का वित्तीय प्रभाव क्या रहा?

कक्षा तीन की पर्यावरण अध्ययन की पुस्तक में आए पाठ 12 (हमारे गौरव-1) में प्राचीन रसायन शास्त्री नागार्जुन, वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु, भगिनी निवेदिता एवं महात्मा गांधी तथा बिरसा मुण्डा की चर्चा है। ये सभी (केवल निवेदिता के अलावा जो विवेकानन्द की शिष्य थी) वेदों, रामायण, महाभारत एवं गीता आदि का अध्ययन करते थे। क्या हमारे (?) गौरव में स्थान पाने के लिए हिन्दू धर्म के धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक है की चेतना प्रारम्भ से ही उत्पन्न नहीं की जा रही। गाड़ोलिया लुहार गाड़ी में घर बनाकर क्यों रहते हैं इसके पीछे एक कहानी की चर्चा

की गई है। 'चित्तौड़ पर जब मुगलों का आक्रमण हुआ तो इन सहित अनेक जातियां विस्थापित हो गईं। गाड़ोलिया लुहार के पूर्वजों ने प्रण किया है कि जब तक संपूर्ण मेवाड़ आजाद नहीं हो जाता वे घर में नहीं रहेंगे (पृ. 98)। क्या इस 'कहानी' के पीछे कोई प्रमाण है? उस स्रोत का उल्लेख नहीं है। कक्षा 4 की अपना परिवेश-पर्यावरण अध्ययन के पाठ 15 (हमारे गौरव-2) में चरक, सुश्रुत, रानी दुर्गावती, सावरकर तथा पटेल की चर्चा है। ये सभी गौरव बहुसंख्यक समूह/जनसंख्या से संबंद्ध हैं और 'हमारे' हैं तो चेतना में यह सोच उभरता है कि क्या अन्य समूहों (अल्प संख्यक समूहों) में कोई भी व्यक्तित्व ऐसा नहीं है जो 'हमारे गौरव' का भाग बन सके? पाठ का शीर्षक इस कारण से भी 'हमारा' एवं 'तुम्हारा' को सामने लाकर भारत के गौरव को विभाजित करने का भाव देता है। नेहरू की चर्चा इन पुस्तकों में नहीं है। ठीक ऐसे ही कक्षा तीन की अंग्रेजी की पुस्तक लेट'स लर्न इंग्लिश में महात्मा गांधी, सरदार पटेल, वी.डी. सावरकर एवं महर्षि अरविन्द (पृ. 123), भगत सिंह, चन्द्र शेखर आजाद एवं लक्ष्मी बाई (पृ. 116) तथा राजस्थान के स्वतंत्रता सैनानियों के उललेख हैं। विद्यार्थी को यह भी संदेश दिया गया है कि सरकार अथवा शासक के विरुद्ध कोई कृत्य या योजना को षडयंत्र (कांसपिरेसी) कहा जाता है। कक्षा चार की अंग्रेजी की पुस्तक लेट'स लर्न इंग्लिश में सिंह के साथ भारत माता की तस्वीर की प्रस्तुति है (पृ. 128)। कक्षा 6 की इंग्लिश रीडर में महाराणा प्रताप, महात्मा गांधी, शिवाजी, स्वामी विवेकानंद, दीनदयाल उपाध्याय एवं डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी का उल्लेख है (पृ. 45)। कक्षा 7 की अंग्रेजी की पुस्तक इंग्लिश रीडर में शिक्षक दिवस का उल्लेख है। इस संदर्भ में डॉ. सर्वपल्लि राधाकृष्णन का उल्लेख नहीं है पर प्रधानमंत्री की 'मन की बात' के प्रसारण की चर्चा है (पृ. 75)। कक्षा पांच की हिन्दी की पुस्तक में 16वां पाठ सरदार पटेल पर है इस पाठ में रियासतों के एकीकरण में पटेल की भूमिका का उल्लेख भर है। पाठ का अधिकांश भाग पटेल के द्वारा सोमनाथ मंदिर के पुनर्निमाण पर केन्द्रित है तथा इस प्रयास को राष्ट्रीय स्वाभिमान की सुरक्षा से जोड़ा गया है (पृ. 76-77)। कक्षा छहः की हिन्दी की पुस्तक का आठवां पाठ (गुलाब सिंह) परोक्ष रूप से धार्मिक विभाजन व उन्माद की प्रस्तुति है। पाठ-9 में मिथकीय गौरव के धार्मिक संदर्भ हैं जबकि पाठ-12 (मुण्डमाल) धार्मिक वैमनस्य एवं जातीय गौरव के साथ सती/जौहर का महिमामण्डन करता है।

यह पुस्तकें हिन्दुत्व की गौरवशाली प्रस्तुति, अल्प संख्यकों विशेषतः इस्लाम के प्रति पूर्वाग्रह, व्यक्तित्व में आक्रामकता, मिथकों को वास्तविकता मानना तथा स्वाधीनता संघर्ष में हिन्दुत्व की उपस्थिति की कोशिश करती हैं। इन प्रारंभिक कक्षाओं में उपरोक्त पुस्तकों का अध्ययन विद्यार्थी को 'हिन्दू भारत' के बोध से परिचित कराता है ताकि साझा सांस्कृतिक विरासत के भारत की समझ धूमिल हो सके। जिस तरह औपनिवेशिक सत्ता ने अपने हितों की पूर्ति हेतु विभाजन एवं अलगाव की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया था, ठीक वही प्रवृत्तियां शिक्षा के माध्यम से वर्तमान में राजसत्ता द्वारा प्रोत्साहित की जा रही हैं। चूंकि सरकारी (राज्य सरकार) विद्यालयों एवं राजस्थान बोर्ड (यह किसी भी राज्य के बोर्ड हो सकते हैं) से संचालित निजी विद्यालयों में निम्न वर्ग के विद्यार्थियों के नामांकन का बहुमत है अतः इस प्रकार की विभाजन मूलक एवं धर्म के वर्चस्व वाली तथा स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों की उपेक्षा करने वाली शिक्षा को भविष्य में निम्न वर्ग सहमति प्रदान कर देगा और जन संघर्षों के स्वरूप बदल कर विभाजन मूलक हो जाएंगे। यही एक किस्म का 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' कहलाएगा।

सामाजिक विज्ञान की पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य समाज के विभिन्न पक्षों (सामाजिक संबंध, संस्कृति, आर्थिकी, राजनीति, इतिहास आदि) को जो 'स्थानीय' से लेकर 'वैश्विक' तक से संबंद्ध हैं, विद्यार्थियों के सम्मुख व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना है। इन पुस्तकों में प्रस्तुत सूचना एवं ज्ञान पक्षों के साक्ष्यों के स्रोत दिए जाने आवश्यक हैं ताकि विश्वसनीयता को स्थापित किया जा सके।

मिथक एवं कल्पनाएं भी प्रस्तुत की जाती हैं ताकि पुस्तक को रुचिपूर्ण बनाया जा सके पर यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि ये मिथक व कल्पनाएं हैं। यहां यह स्वीकारना चाहिए कि पुस्तक के लेखक 'लेखकीय अनुशासन' एवं 'लेखकीय आचार संहिता' की रचना पाठकों के संदर्भ के साथ भी करते हैं। यदि पाठक विद्यार्थी है और विद्यालयी शिक्षा से सम्बद्ध है तो यह 'अनुशासन' एवं 'आचार संहिता' अधिक महत्वपूर्ण एवं जवाबदेह बन जाती है। सामाजिक विज्ञान की कक्षा 6 की पुस्तक के प्रथम अध्याय में 'हमारा ब्रह्माण्ड' में सप्तर्षि मंडल एवं ध्रुव तारे की कहानियों

का उल्लेख निश्चय ही मिथकीय है। लेखक इसे स्वीकारता है (पृ. 2-3) परन्तु पौराणिक काल (पृ. 2) कौन सा है के बारे में चर्चा नहीं है। क्या यह काल स्वयं में 'इतिहास का युग' है या 'इतिहास के युग' का एक भाग है? पाठ 3 (अंतरिक्ष खोज) में आर्यभट्ट, वराहमिहिर एवं भास्कराचार्य द्वितीय का उल्लेख है पर वराहमिहिर के योगदान की चर्चा नहीं है (पृ. 7) अतः अस्पष्टता एवं अपूर्णता आ जाती है। अध्याय 8 में राहुल एवं आशीष का उदाहरण देते हुए यह कहना कि 'आशीष को सेवा एवं मदद करने की शिक्षा उसे अपने परिवार से प्राप्त हुई थी' (पृ. 58) एक पक्षीय विचार है क्योंकि इसका दूसरा पक्ष यह है कि राहूल में जो कटुता है वह भी परिवार से प्राप्त हुई है। परिवार को पूर्ण रूपेण उत्तरदाई बताना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। 'हम में से हर कोई एक परिवार में पैदा हुआ है' (पृ. 58) के विचार में त्रुटि है क्योंकि प्रत्येक बच्चे का जन्म परिवार में हो आवश्यक नहीं है। लेखक ने 'एकल' एवं 'छोटे' परिवार को समानार्थक रूप दे दिया है जो गलत है (पृ. 59)। लेखक निम्न वर्ग के प्रति पूर्वाग्रही लगते हैं जब एक उदाहरण में वे कहते हैं, 'सोचिए! यदि विद्यालय का सहायक कर्मचारी कमरों की सफाई न करे या समय पर घण्टी न बजाए और यदि आपके अध्यापक जी बीमार हो जाएं और आपका पाठ्यक्रम पूरा न हो (पृ. 61)। अध्याय नौ में धर्म एवं पंथ को समानार्थक बताया गया है (पृ. 65)। अध्याय चौदह में यह उल्लेख तो है कि 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज व्यवस्था का प्रारंभ नागौर (राजस्थान) से हुआ था पर नेहरू के नाम की चर्चा नहीं है। इस पुस्तक सहित अन्य पुस्तकों में भी सिन्धु घाटी की सभ्यता को सिन्धु सरस्वती सभ्यता/सरस्वती सिन्धु सभ्यता के नाम से लगातार प्रस्तुत किया गया है। सरस्वती नदी का विवरण दिया गया है (पृ. 117) परन्तु प्रामाणिकता अब तक स्थापित नहीं हो सकी है। ऐतिहासिक तथ्यों से छेड़छाड़ तथा इतिहास को अपनी वैचारिकी के अनुकूल बनाने का यह प्रयास खतरनाक एवं शिक्षा विरोधी है। अध्याय 17 (वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति) हिन्दुत्व के गौरवशाली पक्षों एवं निर्मित अतीत को स्थापित करने का प्रयास है। लेखक किसी भी स्तर पर सभ्यता एवं संस्कृति का अन्तर स्थापित नहीं कर सके हैं। वैदिक धर्म व दर्शन को दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी बताकर (पृ. 123) सर्व श्रेष्ठता स्थापित करने की कोशिश की गई है। वैदिक काल में लड़के-लड़कियों को समान रूप से शिक्षा दी जाती थी (पृ. 123) के विचार का कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है। सोलह संस्कारों के महत्व को भी रेखांकित किया गया है। इस काल में एक पत्नी प्रथा के प्रचलन का भी उल्लेख किया गया है (पृ. 124)। आश्रम व्यवस्था की प्रकार्यात्मकता को स्थापित किया गया है। साथ ही वर्ण व्यवस्था के प्रारम्भिक स्वरूप को बहुत अच्छा बताया गया है (पृ. 125)।

अध्याय 18 (महाजन पद कालीन भारत एवं मगध साम्राज्य) में कोसल जनपद की चर्चा करते हुए 'प्राचीन काल में दिलीप, रघु, दशरथ एवं श्रीराम आदि सूर्यवंशीय शासकों ने (कोसल) इस पर शासन किया था' का उल्लेख कर दशरथ एवं राम को प्राचीन इतिहास का भाग बना दिया गया है (पृ. 130)। ठीक ऐसे ही कुरु को महाभारत काल का एक प्रसिद्ध राज्य बताकर प्रस्तुति की गई है (पृ. 131)। शूरसेन जनपद के संदर्भ में श्री कृष्ण की चर्चा की गई है (पृ. 132)। कक्षा 6 की इस पुस्तक में साझा सांस्कृतिक विरासत तथा बौद्ध एवं जैन धर्म से संबद्ध दार्शनिक पक्षों की अनुपस्थिति है। कक्षा 7 की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक का मुख पृष्ठ सामन्ती जीवन शैली एवं जातीय शौर्य के साथ धार्मिक बाहुल्यता को व्यक्त करता है। इस पुस्तक में जल एवं पृथ्वी/भूमि के पाठों को हिन्दु धर्म के संदर्भों के साथ प्रारम्भ किया गया है। यह पुस्तक समाज की विवेचना समान संस्कृति की विशेषता वाले समूह के रूप में कर (पृ. 65) समरूपीयकरण के तर्क को वैधता देती है जो कि सांस्कृतिक बाहुल्यता एवं विविधता का निषेध है। यह इस विचार को स्थापित करती है कि हमें लापरवाही, हड़ताल जैसी गतिविधियों से बचना चाहिए (पृ. 67)। पुस्तक व्यक्त करती है कि प्राचीन भारत में नारी की स्थिति सुखद थी जो कि विशेषकर मध्यकाल में कमजोर हो गई। बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा मध्यकाल की देन है (पृ. 76)। अध्याय 12 में भारतीय संविधान की संशोधन पूर्व की प्रस्तावना का चित्र प्रदर्शित किया गया है (पृ. 91)। अध्याय 14 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समकक्ष 'स्वच्छ भारत अभियान' को प्रस्तुत किया गया है (पृ. 113)। साथ ही मीडिया को 'उत्तरदाई मीडिया' के रूप में भूमिका निर्वाह की सलाह दी गई है और नकारात्मक एवं अनावश्यक सनसनीखेज रिर्पोटिंग के लालच से बचने को कहा गया है (पृ. 114)। अध्याय 15 (वृहत्तर भारत) प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से वर्तमान भौगोलिक सीमाओं के परे भारत की उपस्थिति की विवेचना है और भारतीय (हिन्दू) संस्कृति के विभिन्न देशों में प्रभाव को दर्शाया गया है।

यह पाठ अनेक स्तरों पर 'सांस्कृतिक विस्तारवाद' को गौरवान्वित करता है। यह पाठ एक तथ्य अवश्य सामने लाता है। समाज की चर्चा (पृ. 121) करते हुए यह कहा गया है, 'विवाह का आदर्श, विभिन्न प्रकार की रस्में... लगभग भारत के समाज की तरह ही थे (यह कम्बुज अर्थात् कम्बोडिया के साथ तुलना है), सती प्रथा भी प्रचलित थी। भारत के प्राचीन समाज की तरह... '(पृ. 121)। अर्थात् प्राचीन भारतीय समाज में सती प्रथा का प्रचलन था जबकि पृष्ठ 76 पर सती प्रथा को मध्यकाल की देन बताया गया है। लेखकों का विस्तारवाद के प्रति आकर्षण अध्याय 16 (हर्षकालीन व बाद का भारत) में भी उभरता है। उनके अनुसार, 'हर्ष महान विजेता था। इसका प्रमाण उस विशाल क्षेत्र से मिलता है जिसे उसने अपने अधिकार में लिया (पृ. 126)। अध्याय 17 (राजस्थान व दिल्ली सल्तनत) में महसूद के द्वारा मन्दिरों के तोड़ने की चर्चा है तथा कहा गया है, 'महमूद के आक्रमणों से भारत की संस्कृति के प्रतीक कई मन्दिर और स्मारक नष्ट हो गए' (पृ. 132)। जलालुद्दीन ने भी मन्दिरों को क्षतिग्रस्त किया। अलाउद्दीन के मुस्लिम सैनिकों ने भी भव्य भवनों व मन्दिरों को धराशायी किया (पृ. 134)। बार-बार मन्दिरों के तोड़ने की चर्चा हिन्दु बनाम मुस्लिम की चेतना स्थापित कर देती है। पाठ 18 (राजस्थान के राजवंश एवं मुगल) में 'वीर शिरोमणि' महाराणा प्रताप 'महान' का विस्तार से विवेचन है (पृ. 139-143)। इसके उपरान्त 'स्वाभिमानी' अमर सिंह राठौड़, वीर दुर्गादास राठौड़ एवं 'महाराजा सूरजमल' की चर्चा है। उपरोक्त विशेषणों का प्रयोग सामान्तवाद को गौरवान्वित करता है। अध्याय 20 में निजामुद्दीन औलिया के उल्लेख में कहा गया है कि 'एक विशेष धर्म के अनुयायी होते हुए भी औलिया में धार्मिक एवं सामाजिक कट्टरता नहीं थी' (पृ. 168)। अध्याय 21 (लोक-संस्कृति) में कैला देवी, जमवाय मामा, करणी माता, जीण माता व त्रिपुरा सुन्दरी के रूप में प्रमुख शक्ति पीठों का उल्लेख है (पृ. 170-173)। पूर्व की पुस्तकों की भांति यह पुस्तक भी हिन्दू जीवन शैली व हिन्दू धर्म के प्रतीकों को भारतीय संस्कृति के रूप में स्थापित करती है और शौर्य तथा आक्रामकता के रूप में हिंसा को वैधता देती है। कई स्थलों पर यह पुस्तक पूर्वाग्रही व एक पक्षीय है। जैसे पृष्ठ 70 पर उल्लेख है कि, 'सामासिक संस्कृति का आधार संस्कृत भाषा और साहित्य है जिसमें सहिष्णुता सन्निहित है।' इस प्रकार का विभाजन मूलक समाजीकरण बच्चों को आक्रामक बनाकर भविष्य में बच्चों को हिंसक व्यवहार हेतु प्रेरित कर सकता है जो कि राजसत्ता का एक उद्देश्य है क्योंकि धार्मिक/सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हेतु यह एक जरूरत है।

कक्षा आठ की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक इस सामाजिक विभाजन को और विस्तार देती है। अध्याय एक (हमारा भारत) का प्रारम्भ 'भारत एशिया महाद्वीप के दक्षिण में स्थित एक अलग ही स्वतंत्र भौगोलिक प्रदेश के रूप में नजर आता है' से होता है जिसके उत्तर-पश्चिम में किर्थर, सुलेमान और हिन्दुकुश पर्वत शृंखलाएं हैं... (पृ. 2)। लेखक यह नहीं बताते कि यह शृंखलाएं पाकिस्तान से संबद्ध हैं। इस पाठ में भारत की भौगोलिक सीमा से लगे पड़ौसी राज्यों की चर्चा ही नहीं है। लेखक मातृ भाषा का अर्थ बताते हुए कहते हैं कि मातृ भाषा वह भाषा है जिसका उपयोग व्यक्ति की मां ने व्यक्ति के बचपन में बात करने के लिए किया है (पृ. 8)। ठीक ऐसे ही दुर्गम इलाकों में रहने वाले समुदायों को, जो सामाजिक विकास की प्रक्रिया में मैदान में बसे कृषक व नगरीय समाज के मुकाबले पिछड़ गए, जनजाति कहते हैं (पृ. 10)। अध्याय सात में राजस्थान का वर्णन करते हुए उल्लेख है कि भारत की तरह हमारा राज्य भी एक धर्म निरपेक्ष राज्य है अर्थात् यहां सभी प्रकार के धर्मों को मानने वाले लोग रह सकते हैं। यह राज्य हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई, जैन, बौद्ध और इन मुख्य धर्मों के कई सम्प्रदायों जैसे शैव, वैष्णव, शिया, सुन्नी, मेव, पठान की जन्म और कर्म भूमि है (पृ. 59)। इस दृष्टि से राजस्थान भारत की तरह एक स्वतंत्र राज्य है जो धर्म निरपेक्ष है और यहां अनेक धर्म व सम्प्रदाय उत्पन्न हुए हैं। अध्याय नौ (समकालीन भारतीय समाज) में भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता रहा है जो अब परिवर्तन के कारण पवित्र संस्कार से समझौते की स्थिति में आ गया है, का उल्लेख है (पृ. 73)। यहां हिन्दू सामाजिक व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था हो गई है तथा पवित्र संस्कार के उल्लेख से लगता है कि कुछ संस्कार अपवित्र भी होते हैं। लेखक के तर्क हैं कि (1) जाति के धार्मिक आधार समाप्त हो रहे हैं (2) जाति सामाजिक संस्था के रूप में मजबूत हो रही है (3) वर्चस्व स्थापित करने की होड़ ने जातीय सद्भाव को ठेस पहुंचाई है (4) जातीय भाई-चारे की भूमिका प्रारम्भ में चुनाव जीतने में निर्णायक रहती थी पर अब जाति चुनावी राजनीति का आधार बन गई है (5) आरक्षण की मांग बढ़ती जा रही है

और इसने राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया प्रतीत होता है और (6) आरक्षण एवं संरक्षण प्राप्त जाति वर्गों में एक शिक्षित एवं शक्तिशाली मध्यम वर्ग का उदय हो चुका है (पृ. 75-76)। लेखकों के ये तर्क जाति के एक पक्षीय स्वरूप से जुड़े हैं और जाति की प्रशंसा करते नजर आते हैं। साथ ही लेखकों को जाति एवं वर्ग के मध्य अन्तर करने की आवश्यकता नहीं लगी। लेखक अनुसूचित जन जातियों को 'आदिवासी जातियों' का उद्‌बोधन देते हैं (पृ. 82)। चूंकि जाति हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का भाग है अतः 'आदिवासी जातियों' शब्द का प्रयोग कर सभी जन जातियों को हिन्दू बता दिया गया है। ठीक ऐसे ही अनुसूचित जातियों एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के अर्थ भी अस्पष्ट एवं त्रुटिपूर्ण हैं। अध्याय 12 में पंथ निरपेक्षता का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि राज्य सभी पंथों की समान रूप से रक्षा करेगा और स्वयं किसी भी पंथ को राज्य के धर्म के रूप में नहीं मानेगा (पृ. 92)। अध्याय 15 में कहा गया है कि वर्तमान समय में भी कुछ कानून परम्पराओं, रीति रिवाजों एवं धार्मिक मान्यताओं पर आधारित होते हैं। ये सामाजिक कानून कहलाते हैं (पृ. 110)। अवधारणाओं के त्रुटिपूर्ण अर्थ इस पुस्तक में अनेक स्थानों पर हैं जो 'भ्रामक ज्ञान' को जन्म दे सकते हैं। इस पुस्तक में 'राष्ट्रीय सुरक्षा' पर अध्याय 16 को केन्द्रित किया गया है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय गौरव के एक पक्षीय अर्थ हेतु 'सुरक्षा' पर बल दिया जाना आवश्यक है, ऐसा लगता है। अध्याय 17 में औरंगजेब के बाद के समस्त मुगल शासकों को निकम्मा तथा विलासी कहा गया है (पृ. 124)। साथ ही कहा गया है कि मुगल काल में अधिकांश शासक राष्ट्रीय दृष्टिकोण के शासक नहीं हुए (पृ. 125)। लेखकों की दृष्टि में 18वीं शताब्दी में भारतीय समाज में निवास करने वाले हिन्दू एवं मुस्लिमों में समान रीति रिवाज प्रचलित थे (पृ. 127)। राष्ट्रीय आन्दोलन से संबद्ध 22 वे अध्याय में महात्मा गांधी, लाजपत राय, भगतसिंह, हेमू कालाणी, सावरकर, सुभाष चन्द्र बोस को औपनिवेशिक शासन का विरोध करने वाले प्रमुख नेताओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अन्य प्रमुख नेताओं जैसे नेहरू, नौरोजी आदि की पूर्ण उपेक्षा की गई है। साथ ही प्रमुख नेताओं, जिनकी लेखक चर्चा करते हैं, के योगदान एवं जीवन परिचय अपूर्ण हैं जैसे गांधी की हत्या का उल्लेख नहीं है (देखें अध्याय 22, पृ. 157-166)। औपनिवेशिक शासन का साथ देने वाले राजाओं सामन्तों एवं संगठनों की भूमिका पर टिप्पणी नहीं है। यह पुस्तक 1587 के स्वतंत्रता संग्राम संबंधी 18वें अध्याय से 'सिलेक्टिव विवेचना' को और व्यापकता से अपनाती है। अध्याय 23 (आजादी के बाद का भारत) में बिखराव चरम रूप में है। नेहरू अनुपस्थित हैं, सरदार पटेल की प्रमुख उपस्थिति है। राजेन्द्र प्रसाद की चर्चा है पर अम्बेडकर की उपेक्षा है। विस्थापितों के योगदान का उल्लेख है पर प्रश्न सिन्धी विस्थापितों के योगदान पर पूछा गया है (पृ. 179)। गुट निरपेक्ष आन्दोलन पर भी टिप्पणी नहीं है। ये सभी पाठ (पाठ 18 से पाठ 23) एक पक्षीय, पूर्वाग्रही एवं अपूर्णता का प्रतिनिधित्व करते हैं। पाठ 24 (हमारे गौरव) में चन्द वरदाई, गणितज्ञ ब्रह्म गुप्त, विश्व के प्रथम शल्य चिकित्सक महर्षि सुश्रुत, गणितज्ञ रामानुजम, महाकवि माघ, सूत्रधार मण्डन, महर्षि पाराशर, चक्रपाणि मिश्र एवं शारंग धर का विवेचन है (पृ. 180-186)। सूत्रधार मण्डन के विवेचन में कहा गया है कि मण्डन उस काल में हुए जबकि मन्दिर, मूर्ति और चित्रकला आदि संकट में थे (पृ. 184)। यह संकेत मध्य युगीन भारत की तरफ है।

असल में ये समस्त पुस्तकें 'हम' बनाम 'वे' अर्थात हिन्दु (इनके अनुसार भारतीय) एवं अन्य (विशेषतः मुस्लिम) के मध्य विभाजन को वैधता देने की कोशिश कर धर्मनिरपेक्षता, सहिष्णुता एवं साझा सांस्कृतिक विरासत पर प्रहार करती हैं। हिन्दु समाज ही भारतीय समाज है का संकेत ये पुस्तकें करती हैं एवं संवैधानिक मूल्यों की अवहेलना करती हैं। सरकारी एवं निजी विद्यालय, जो राजस्थान बोर्ड से संबद्ध हैं, में निम्न वर्ग के विद्यार्थियों की संख्या सर्वाधिक है। इस पीढ़ी को सामाजिक विभाजन की शिक्षा देकर ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को भविष्य में गति देने की संस्थागत कोशिश इन पुस्तकों का लक्ष्य है। इस दृष्टि से ये पुस्तकें शिक्षा की दृष्टि से 'खतरनाक' हैं और राजसत्ता के उन हितों की पूर्ति का माध्यम है जो धर्म निरपेक्ष भारत के अस्तित्व के नकार से संबद्ध हैं। ◆

लेखक परिचयः राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के समाजशास्त्र विभाग से प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त होने के बाद शिक्षा एवं सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय हैं।

विज्ञान

पर्यावरण अध्ययन समाहित

पुस्तकों में विज्ञान का एक जड़ नजरिया पेश किया गया है जो इस गूढ़ वाक्य में कैद हो जाता हैः ''प्रकृति के अन्वेषण एवं उससे प्राप्त सुव्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।" ...विज्ञान एक खास तरह का अन्वेषण है जिसकी अपनी विधियां हैं, कसौटियां हैं, सही-गलत के फैसले करने के आधार व तौर-तरीके हैं, आगे बढ़ने के रास्ते हैं। सबसे बड़ी बात कि उसमें ज्ञान के किसी भी पड़ाव पर पहुंचकर हम सब कुछ जान लेने का दावा नहीं करते और न ही अंतिम सत्य को पाना विज्ञान का मकसद है। पुस्तकें तो इस वाक्य के दूसरे हिस्से (उससे प्राप्त सुव्यवस्थित ज्ञान) को भी ठीक से प्रस्तुत नहीं कर पाई हैं।

नई पाठ्यपुस्तकें

विज्ञान को लेकर एक जड़ नजरिया

सुशील जोशी

राजस्थान पाठ्यपुस्तक मंडल की विज्ञान की कक्षा 6, 7 व 8 की पुस्तकों को देखने का अवसर मिला। पढ़ने बैठा तो लगा कि नहीं पढ़ पाऊंगा। एक तरफ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की दुहाई और दूसरी तरफ जानकारी ठूंसने की ललक ने इन किताबों को अपठनीय बना दिया है, समझने की बात तो दूर की है।

यहां कक्षा 6 की किताब पर चर्चा कर रहा हूं। इसके 'प्राक्कथन' व 'शिक्षक के लिए' खंड में कहा गया हैः

1. समस्त शिक्षण प्रक्रियाओं के केंद्र में बालक है।
2. सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि बालक स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझ कर ज्ञान का निर्माण करे।
3. पाठ्यपुस्तक सरल, सुगम, सुरुचिपूर्ण, सुग्राह्य एवं आकर्षक हो।
4. ज्ञान तक पहुंचने का अर्थ है अन्य व्याख्याओं एवं मानक ज्ञान तथा सूचनाओं के साथ अपना स्वयं का संवाद स्थापित कर पाना।
5. विज्ञान की प्रमुख विषयवस्तुओं को प्रयोगाधारित, क्रियाविधि आधारित एवं संवाद के रूप में तैयार किया गया है।
6. विज्ञान की विषयवस्तुओं को विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है जिसके अवलोकन, जिज्ञासा, वर्गीकरण, विभेदीकरण, विश्लेषण, निष्कर्ष प्रतिपादन आदि विभिन्न चरणों को यथास्थान सम्मिलित किया गया है।

कुछ अच्छी बातें

किताबों को पढ़कर लगता है कि हम बहुत आगे नहीं बढ़े हैं। मगर इनमें कुछ अच्छी बातें भी हैंः

1. प्रूफ रीडिंग की गलतियां बहुत कम हैं।
2. छपाई साफ-सुथरी है। (मैंने पाया कि कक्षा 8 की पुस्तक तक पहुंचते-पहुंचते छपाई की स्थिति बिगड़ती गई है)
3. अधिकांश चित्रों में देखकर पता चल जाता है कि वह किस चीज का चित्र है।
4. छपाई रंग-बिरंगी है हालांकि कहीं-कहीं रंगों की वजह से भीड़भाड़ का एहसास होता है।

लेकिन मेरा संबंध तो विषयवस्तु तथा उसके प्रस्तुतीकरण से है। प्रस्तुतीकरण से आशय यह है कि क्या विषयवस्तु को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि वह बच्चों को विषय की अवधारणाओं को समझने में मदद करे और साथ-साथ उनमें विज्ञान के तौर-तरीकों की समझ भी पैदा करे। क्या प्रस्तुतीकरण बच्चों को उपरोक्त बिंदु क्रमांक 6 में वर्णित चरणों का रसास्वादन और उनका अभ्यास करने का अवसर देता है?

विषयवस्तु

मुझे नहीं लगता कि इस मामले में कोई आम सहमति है कि कौन-सी विषयवस्तु, कौन-सी अवधारणा, कौन-सा कौशल, विधि का कौन-सा पक्ष विद्यार्थी किस उम्र में सीख सकते हैं। हर बारी यह लेखकों के विवेक का निर्णय होता है कि वे किस कक्षा में कौन-सी विषयवस्तु को शामिल करेंगे।

इतना कहने के बाद यह कहना भी जरूरी है कि चाहे हर बिंदु पर आम सहमति न हो मगर एक मोटी-मोटी समझ तो बनी है कि किस कक्षा के बच्चों को क्या पढ़ाया जाए। जाहिर है आप प्लाज्मा अवस्था को पहली कक्षा में नहीं पढ़ाएंगे। तो निर्णय करना होगा कि पदार्थ की इस चौथी अवस्था के बारे में किस कक्षा में पढ़ाएं। यह निर्णय करने के आधार क्या होंगे?

क्या निर्णय 'बालक को केंद्र' में रखकर लिया जाएगा? क्या इस निर्णय का आधार विषय का मौजूदा ज्ञान होगा? क्या इस निर्णय का आधार ज्ञान की क्रमबद्धता होगी? या क्या निर्णय का आधार यह होगा कि किसी छात्र को सम्बंधित विषय का पारंगत बनने के लिए या आगे अध्ययन जारी रखने के लिए किस विषयवस्तु से परिचित हो जाना आवश्यक है? क्या ऐसे निर्णय करते वक्त यह ध्यान में रखा जाएगा कि विद्यार्थी उस विषयवस्तु को समझने के लिए जरूरी चीजें सीख चुका है या तैयार हो चुका है। क्या यह भी सोचना जरूरी है कि क्या उस कक्षा में बच्चे के लिए वह ज्ञान सार्थक रूप से उसके शेष ज्ञान के साथ जुड़कर ज्ञान में गुणात्मक वृद्धि करेगा? एक कक्षा की पाठ्यपुस्तक बनाते समय ऐसे निर्णय कई बार लेने होते हैं।

पहले यह देख लें कि पाठ्यपुस्तक में प्लाज्मा अवस्था के बारे में क्या कहा गया है।

''पदार्थ की यह अवस्था वास्तव में संतृप्त गैसीय अवस्था मानी जाती है। यह अवस्था गर्म आयनित पदार्थ के रूप में पाई जाती है। सूर्य, तारों, ट्यूब लाइट, टीवी की पिक्चर ट्यूब आदि में प्लाज्मा अवस्था पाई जाती है। इस अवस्था पर शोध कार्य जारी है। इसके बारे में आप अगली कक्षाओं में अध्ययन करेंगे।''

आम तौर पर पदार्थ की तीन अवस्थाएं पढ़ाई जाती हैं। बालक को केंद्र में रखेंगे तो चौथी अवस्था को जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। हां, विषय (कौन-सा विषय?) की संपूर्णता की दृष्टि से शायद प्लाज्मा की बात करना जरूरी लगे। मगर कम से कम भौतिक शास्त्र में सामान्य अध्ययन के दौरान आपको प्लाज्मा अवस्था को अपने विश्लेषण में नहीं जोड़ना पड़ता। सामान्य अवलोकन में यह अवस्था प्रकट होती नहीं। ट्यूब लाइट वगैरह का नाम ले देने भर से यह अवस्था घनिष्ठता के दायरे में नहीं आ जाती। क्योंकि यदि ऐसा होता तो शकर नाम का जाप करने भर से आपको सहसंयोजी बंधन, कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन के परमाणु, हाइड्रोजन बंधन आदि स्पष्ट नजर आना चाहिए। बल्कि यह कहना कि ट्यूब लाइट में प्लाज्मा अवस्था पाई जाती है, भ्रामक है। कहां है ट्यूब लाइट में प्लाज्मा अवस्था? क्या जब ट्यूब लाइट बुझी होती है तब प्लाज्मा अवस्था मौजूद होती है या सिर्फ तब प्रकट होती है जब ट्यूब लाइट जलती है। अभी तो विद्यार्थियों को यह तक नहीं मालूम कि ट्यूब लाइट और तापदीप्त बल्ब में रोशनी पैदा होने की क्रिया में क्या फर्क है।

यह भी देखना होगा कि क्या उक्त परिभाषा कोई अर्थ संप्रेषित करती है या कोई छवि निर्मित करने में मदद करती है। आयन, आयनीकरण, आयनित वगैरह से छात्रों का परिचय हुआ नहीं है और अगले कुछ वर्षों में होने वाला नहीं है। ऐसे में यह कहना कि ''संतृप्त गैसीय अवस्था मानी जाती है। यह अवस्था गर्म आयनित पदार्थ के रूप में पाई जाती है" बेमानी है। इसमें से कोई सार्थक बिंब नहीं उभरता। मुहावरे में कहें तो यह थोथा चना बाजे घना की मिसाल है। लेखक बताना चाहते हैं कि वे विज्ञान की नवीनतम जानकारी के जानकार हैं।

मैंने इस उदाहरण पर काफी समय व्यतीत इसलिए किया क्योंकि पूरी किताब ऐसे ही उदाहरणों से भरी पड़ी है।

संक्षेप में कहा जाए, तो इस पुस्तक में विषयवस्तु को सम्मिलित करते हुए न तो बालक को केंद्र में रखा गया है और न ही विषय की प्रकृति को।

पाठ्यपुस्तक लेखकों ने इन वाक्यों का आशय यह निकाला कि जैसे पूजा-पाठ, हवन वगैरह में किया जाता है, उस तरह की कुछ प्रक्रिया अपनाई जाए। यजमान को बैठा दिया जाता है और फिर ब्राह्मण मंत्र बोलता है और समय-समय पर यजमान को अपने नाम का उच्चारण करने, कोई वस्तु हवन कुंड में अर्पित करने, हाथ धोने, नमस्कार करने वगैरह के निर्देश देता चलता है। इस पूरी प्रक्रिया का परिणाम यह होता है कि हवन सम्पन्न हो जाता है, यजमान को विश्वास हो जाता है कि जिस उद्देश्य से हवन किया गया था, उसमें सफलता मिलेगी। लगभग यही स्थिति चर्चित पाठ्यपुस्तक की भी है। बल्कि उससे भी बुरी है।

सम्मिलित करने के बाद

जैसा कि मैंने पहले ही कहा था, विषयवस्तु के चयन के कोई स्पष्ट वस्तुनिष्ठ आधार नहीं हैं और प्रायः यह विवेकाधीन होता है। तो मानकर चल सकते हैं कि इस पुस्तक के लेखकों ने सोच समझकर ही निर्णय लिए होंगे। हालांकि इस पुस्तक में कई ऐसी विषयवस्तु को स्थान मिला है, जिसे एनसीईआरटी ने काफी विचार-विमर्श के बाद कक्षा 6-8 के स्तर से हटाने का फैसला लिया है। जैसे परमाणु संरचना को कक्षा 6-8 से हटाकर कक्षा 9 में स्थान देना इसी प्रकार का निर्णय है। बहरहाल, एनसीईआरटी भी कोई अविवादित कसौटी नहीं है मगर इतना जरूर है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के निर्माण में काफी गहन विचार-विमर्श हुआ है और कई लोगों की इसमें भागीदारी रही है।

सवाल यह है कि एक बार किसी विषयवस्तु को शामिल करने के निर्णय के बाद उसके साथ क्या किया जाए। प्राक्कथन का तकाजा है कि सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि बालक स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझ कर ज्ञान का निर्माण करे। ज्ञान तक पहुंचने का अर्थ है अन्य व्याख्याओं एवं मानक ज्ञान तथा सूचनाओं के साथ अपना स्वयं का संवाद स्थापित कर पाना। विज्ञान की विषयवस्तुओं को विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाए जिसके अवलोकन, जिज्ञासा, वर्गीकरण, विभेदीकरण, विश्लेषण, निष्कर्ष प्रतिपादन आदि विभिन्न चरणों को यथास्थान सम्मिलित किया जाए।

मैं स्वीकार करता हूं कि हो सकता है मैंने इन लक्ष्यों को समझने में भूल की हो। जैसे जब मैंने इन्हें पढ़ा तो माना कि किसी विषयवस्तु को इस तरह पढ़ाया जाएगा कि विद्यार्थी अवलोकन, वर्गीकरण, विभेदीकरण, विश्लेषण, निष्कर्ष प्रतिपादन वगैरह करेंगे। मैंने यह भी सोचा कि इसमें विज्ञान की कुछ प्रमुख चीजों को यथास्थान नहीं मिला है। जैसे परिकल्पना बनाना और परिकल्पना की जांच करके उसे स्वीकार करना या खारिज करना। मेरी भूल थी कि मैंने मान लिया कि पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण प्रक्रिया का लक्ष्य बच्चों को इनके अभ्यास के अवसर देना होगा।

पाठ्यपुस्तक लेखकों ने इन वाक्यों का आशय यह निकाला कि जैसे पूजा-पाठ, हवन वगैरह में किया जाता है, उस तरह की कुछ प्रक्रिया अपनाई जाए। यजमान को बैठा दिया जाता है और फिर ब्राह्मण मंत्र बोलता है और समय-समय पर यजमान को अपने नाम का उच्चारण करने, कोई वस्तु हवन कुंड में अर्पित करने, हाथ धोने, नमस्कार करने वगैरह के निर्देश देता चलता है। इस पूरी प्रक्रिया का परिणाम यह होता है कि हवन सम्पन्न हो जाता है, यजमान को विश्वास हो जाता है कि जिस उद्देश्य से हवन किया गया था, उसमें सफलता मिलेगी। लगभग यही स्थिति चर्चित पाठ्यपुस्तक की भी है। बल्कि उससे भी बुरी है। उक्त सारे तत्वों का 'डिमॉन्स्ट्रेशन' भी ठीक ढंग से नहीं किया गया है।

अवलोकन

सबसे पहले अवलोकन की स्थिति को देखते हैं। मैं बहुत सारे उदाहरण प्रस्तुत नहीं करूंगा पर विश्वास कीजिए यहां प्रस्तुत उदाहरण आम परिस्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ उल्लेखनीय अपवाद हैं जिनकी चर्चा भी की गई है।

---

1. इस बात की चिंता न करें कि छात्र अभी नहीं जानते कि प्रजाति क्या होती है क्योंकि उन्हें करना तो कुछ है नहीं।
2. क्लोरोफिल अणु निकल गए या नहीं इसे जानने का तरीका अप्रासंगिक ही है। वास्तव में इस बात का फैसला कैसे होगा?

उदाहरण 1 (अध्याय 2, पादपों में पोषण, गतिविधि 1)

एक ही प्रजाति[1] के पौधों के दो गमले लीजिए। एक गमले को 72 घंटे के लिए अंधकार में तथा दूसरे गमले को सूर्य के प्रकाश में रखिए। दोनों गमलों से एक-एक पत्ती लीजिए। दोनों पत्तियों को एक परखनली में डालकर इतना स्प्रिट भरिए कि वे डूब जाएं। इस परख नली को पानी से आधे भरे बीकर में रखकर तब तक गर्म कीजिए जब तक कि पत्तियों में सभी क्लोरोफिल अणु[2] नहीं निकल जाएं। अब इन पत्तियों को जल से धोकर इन पर आयोडीन विलयन की कुछ बूंदें डालिए।

क्या दोनों पत्तियों के रंग में परिवर्तन होता है?

हम देखेंगे कि सूर्य के प्रकाश में रखे पौधे की पत्ती के रंग में तो परिवर्तन होता है लेकिन अंधेरे में रखे पौधे की पत्ती के रंग में परिवर्तन नहीं हुआ। **(आड़ा-तिरछा मैंने किया है।)**

तो विद्यार्थियों को अवलोकन करना नहीं है, सुनना/पढ़ना है।

क्या उन्हें पता है कि यह गतिविधि क्यों करना है या क्यों पढ़ना है? जी हां, यह गतिविधि यह पता करने के लिए है कि ''क्या सूर्य के प्रकाश की अनुपस्थिति में भी प्रकाश संश्लेषण क्रिया होती है।''

सवाल है कि इस गतिविधि से कैसे पता चलेगा। दरअसल यह गतिविधि तो तब सार्थक होगी जब आप प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को किसी अन्य तरीके से देख चुके हों। पूरी बात तो यह है कि पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। इस प्रयोग को पढ़ने के बाद मेरे दिमाग में हमेशा यह सवाल आता है कि आलू में खूब स्टार्च पाया जाता है (आलू को काटकर उस पर आयोडीन के घोल की कुछ बूंदें डालकर देख लीजिए) और आलू जमीन के नीचे अंधेरे में रहता है। तो वहां अंधेरे में स्टार्च का संश्लेषण हुआ होगा। यदि स्टार्च की उपस्थिति ही इस बात का सूचक है कि वह स्टार्च उसी जगह बना है, तो आलू में स्टार्च की व्याख्या कौन करेगा। पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं इस बात की जांच सिर्फ पत्तियों पर ही क्यों की गई?

खैर मैं यहां सिर्फ इस बिंदु को रेखांकित करना चाहता हूं कि अधिकांश गतिविधियों के बाद सारे अवलोकन तत्काल लिखकर बता दिए गए हैं। लिहाजा, अवलोकन करने की कोई जरूरत नहीं है। और इस संभावना को भी पूरी तरह निरस्त कर दिया गया है कि अवलोकनों में विविधता हो सकती है। हां, कुछ अपवाद जरूर हैं, जहां अपेक्षा की गई है कि विद्यार्थी स्वयं अवलोकन करेंगे।

प्रकाश संश्लेषण वाला प्रयोग वैसे भी काफी मुश्किल है, शायद अवलोकन बताकर अच्छा ही किया। स्प्रिट मिलना बहुत कठिन काम है। मगर कई अत्यंत साधारण अवलोकन करने की छूट भी विद्यार्थियों को नहीं दी गई है। एक उतावलापन और संदेह है। शायद बच्चे देख ही न पाएं, शायद देखकर भी अनदेखा कर दें, या कहीं ऐसा न हो कि शिक्षक गतिविधि करवाने की जहमत न उठाएं। ऐसा हो गया तो 'सीखना' कैसे संभव होगा। इसलिए सारे अवलोकन लिख दिए गए हैं।

उदाहरण 2 : (अध्याय 3, वस्तुओं की प्रकृति, गतिविधि 5)

कांच की प्याली में लकड़ी का बुरादा और आलपिन लीजिए और उसके पास चुंबक लाइए। आप क्या देखते हैं? (और इससे पहले कि कोई देख पाए) ***आप देखेंगे कि आलपिन चुंबक की ओर आकर्षित होती है जबकि लकड़ी का बुरादा नहीं।*** **अतः हम कह सकते हैं कि आलपिन चुंबकीय है और लकड़ी का बुरादा अचुंबकीय है।**

और अब एक उदाहरण देखते हैं जहां बच्चों को वास्तव में गतिविधि न करने देकर निष्कर्ष थोपने का परिणाम घोर अवैज्ञानिक रहा है।

घोर अविश्वास पर टिकी है यह प्रक्रिया जिसका उद्देश्य बताया गया है कि ''सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि बालक स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझ कर ज्ञान का निर्माण करे''। ज्ञान का निर्माण करना तो दूर बालक तो अवलोकन भी नहीं कर रहा है। उससे भी बुरी बात यह है कि उसे बार-बार बताया जा रहा है कि पहले से पता है कि क्या दिखने वाला है, इसलिए अंतिम सत्य को स्वीकार कर लेने में ही भलाई है।

उदाहरण 3 : (अध्याय 10, गतिविधि, खंड 10.3 दूरी का मापन)

विद्यार्थियों को बताया जाता है कि ''प्राचीन काल में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी कदमों में नापते थे। छोटी दूरियों को अंगुलियों और बालिश्त में नापते थे। क्या यह मापन सही था? आओ पता लगाएं।''

इसके बाद उनसे उनकी विज्ञान की पुस्तक को अंगुलियों तथा से.मी. में और कबड्डी के मैदान की लंबाई व चौड़ाई को कदमों तथा मीटर में नापने को कहा जाता है। तालिकाएं बनाई जाती हैं जिनमें प्रत्येक विद्यार्थी के दोनों नाप लिखे जाते हैं। फिर कहा जाता हैः

''उपर्युक्त सारणी का अवलोकन कीजिए। हम देखते हैं कि प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा कदमों द्वारा मापी गई लंबाई व चौड़ाई भिन्न-भिन्न आती है जबकि मीटर में नापी गई लंबाई व चौड़ाई सभी विद्यार्थियों की समान है।''

शायद लेखकों ने कभी इसे करके नहीं देखा है। और शायद वे मापन के बारे में एक बुनियादी बात भी नहीं जानते हैं मापन में घट-बढ़। यदि जानते होते तो या तो यह गतिविधि न करते या बच्चों को मौका देते कि वे मीटर-से.मी. में मापी गई लंबाइयों में घट-बढ़ की धारणा पर विचार कर सकें।

घोर अविश्वास पर टिकी है यह प्रक्रिया जिसका उद्देश्य बताया गया है कि ''सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि बालक स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझ कर ज्ञान का निर्माण करे''। ज्ञान का निर्माण करना तो दूर बालक तो अवलोकन भी नहीं कर रहा है। उससे भी बुरी बात यह है कि उसे बार-बार बताया जा रहा है कि पहले से पता है कि क्या दिखने वाला है, इसलिए अंतिम सत्य को स्वीकार कर लेने में ही भलाई है।

कुछ अपवाद

उक्त सामान्य ढांचे के कुछ अपवाद भी हैं। जैसे विद्युत परिपथ (अध्याय 14) में विद्युत परिपथ बनाने के बाद चालक और कुचालक की पहचान वाले प्रयोग (गतिविधि 4) में वाकई विद्यार्थियों को कई वस्तुओं की जांच परिपथ में लगा-लगाकर करने को कहा गया है और सम्बंधित तालिका को खुला रखा गया है, जिसमें विद्यार्थी अपने अवलोकन लिखेंगे।

वर्गीकरण

यह तो सर्वमान्य बात है कि वर्गीकरण और समूहीकरण करना विज्ञान की एक प्रमुख गतिविधि है। वर्गीकरण करके आप परिभाषाएं विकसित करते हैं, आपको गुणधर्मों के पैटर्न दिखते हैं, गुणधर्मों को समझने के लिए मसाला मिलता है, वस्तुओं के बीच के अंतर्सम्बंध दिखते हैं और इनके आधार पर उन अंतर्सम्बंधों की व्याख्या की शुरुआत होती है। जरा देखें बालकों को वर्गीकरण के कैसे अभ्यास करवाए गए हैं।

यह तो मानना होगा कि एक-दो पाठों में समूहीकरण के काफी अभ्यास करने का मौका बच्चों को दिया गया है। इनमें भोजन के आधार पर समूहीकरण, स्रोत के आधार पर भोजन का वर्गीकरण, वस्तुओं को बनाने में लगने वाले पदार्थों के आधार पर वर्गीकरण, प्राकृतिक-कृत्रिम का वर्गीकरण आदि शामिल हैं। लेकिन ये उदाहरण मात्र दो अध्यायों के हैं। शेष अध्यायों में इस क्रिया का कोई जिक्र नहीं है।

जिन अध्यायों में वर्गीकरण की क्रिया करवाई गई है वहां भी यह मात्र वस्तुओं को परिभाषित करने के लिहाज से करवाई गई है। विभिन्न समूहों के बीच अंतर्सम्बंध की खोज या पैटर्न देखना जैसी चीजें तो पूरी तरह नदारद हैं। वस्तुओं को परिभाषित करना एक महत्वपूर्ण काम है मगर विज्ञान मात्र उतना ही नहीं है।

विश्लेषण

विश्लेषण का तो नामो निशान नहीं है। विद्यार्थियों द्वारा विश्लेषण तो दूर, लेखकों द्वारा इसका प्रदर्शन भी नहीं किया गया है। तरीका यह है कि कोई प्रश्न रखा जाए, कहा जाए कि अब इसे जानने का प्रयास करेंगे और फिर सारगर्भित उत्तर लिख दिया जाए।

यही उत्तर क्यों मान्य है, क्या किसी वैकल्पिक उत्तर की संभावना है, यदि है तो क्या उसे प्रयोगों, अवलोकनों, तर्कों के आधार पर अस्वीकार किया गया है, जैसी बातें तो विद्यार्थियों को 'कंफ्यूज' करेंगी ऐसा माना जाता है। जिस ढंग से विज्ञापन एजेंसियां काम करती हैं वही तरीका इन पुस्तकों में विज्ञान पढ़ाने पर लागू किया गया है। लेखकों द्वारा रचे गए सवाल हैं और उन्हीं के द्वारा दिए गए जवाब हैं।

उपरोक्त बिंदु क्रमांक 4 (ज्ञान तक पहुंचने का अर्थ है अन्य व्याख्याओं एवं मानक ज्ञान तथा सूचनाओं के साथ अपना स्वयं का संवाद स्थापित कर पाना) के लिए जानबूझकर जगह नहीं छोड़ी गई है।

विश्लेषण का तो नामो निशान नहीं है। विद्यार्थियों द्वारा विश्लेषण तो दूर, लेखकों द्वारा इसका प्रदर्शन भी नहीं किया गया है। तरीका यह है कि कोई प्रश्न रखा जाए, कहा जाए कि अब इसे जानने का प्रयास करेंगे और फिर सारगर्भित उत्तर लिख दिया जाए। ...जिस ढंग से विज्ञापन एजेंसियां काम करती हैं वही तरीका इन पुस्तकों में विज्ञान पढ़ाने पर लागू किया गया है। लेखकों द्वारा रचे गए सवाल हैं और उन्हीं के द्वारा दिए गए जवाब हैं।

विश्लेषण का अर्थ होगा कि कोई सवाल सामने है, या कोई अवलोकन किया गया है जिसमें से कोई सवाल निकला है। इसका समाधान करने के तरीकों पर विचार करना, जवाब (परिकल्पना) के सही-गलत होने की कसौटियां तय करना, फिर विभिन्न जवाबों को इन कसौटियों पर परखना, तर्क करना, जरूरी हो तो प्रयोग करना, और अवलोकन करना वगैरह। मगर जब जवाब तय है तो इस सबसे क्या फर्क पड़ता है।

निष्कर्ष प्रतिपादन

इसका ठीक-ठीक अर्थ शायद यही होगा कि किसी सवाल, समस्या के कारणों को खोजना। यह पता लगाना कि जो कारण बताया जा रहा है वह सही है या नहीं। शायद थोड़े हल्के स्तर पर देखें तो कहेंगे कि अवलोकनों को व्यवस्थित करके पैटर्न खोजना भी निष्कर्ष की श्रेणी में रखा जा सकता है। मगर सारे जवाबों से लैस इस पुस्तक में सारे निष्कर्ष दिए गए हैं, उनका प्रतिपादन करने की न तो कोई जरूरत है और न अहमियत। और तो और निष्कर्ष प्रस्तुत हो जाने के बाद भी कोई गुंजाइश नहीं है कि आप यह कह सकें कि शायद संदेह की जगह है। चाहे विज्ञान के अभ्यासी संदेह को कितना ही महत्वपूर्ण गुण मानते हों, मगर ये किताबें इसको एक अनावश्यक भटकाव ही मानती हैं।

यदि यह मान भी लिया जाए कि निष्कर्षों के प्रतिपादन में बच्चे शरीक नहीं होंगे क्योंकि वह बहुत मुश्किल है, फिर भी इतना तो किया ही जा सकता है कि बच्चों के सामने (उदाहरण के तौर पर) यह प्रस्तुत हो कि निष्कर्ष कैसे निकाले जाते हैं।

जानकारी

अंततः इन पुस्तकों का एकमात्र मकसद जानकारी देना भर रह जाता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि जानकारी उपलब्ध कराना अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं है। किसी विषय में वर्तमान समय में कुछ मान्य सूचनाएं/नियम/धारणाएं/अवधारणाएं/पद्धतियां/तकनीकें होती हैं जो उस विषय में विश्लेषण का ढांचा प्रस्तुत करती हैं। इनके साथ ही कुछ सवाल होते हैं जिनका समाधान विश्लेषण के इस ढांचे के अंतर्गत किया जाता है। थॉमस कुन इस ढांचे को पैराडाइम कहते हैं। कुन के मुताबिक विज्ञान शिक्षण/प्रशिक्षण का अर्थ विद्यार्थियों को इस पैराडाइम में काम करने को तैयार करना है। यदि विज्ञान शिक्षा के इस उद्देश्य को मान लिया जाए तो इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज उपलब्ध जानकारियों वगैरह से परिचित कराना विज्ञान शिक्षा का वैध मकसद है। मगर कुन यह भी कहते हैं कि यह शिक्षण/प्रशिक्षण इस तरह होना चाहिए कि विद्यार्थी इस पैराडाइम का उपयोग नए सवालों को

रोचक बात यह है कि इस पुस्तक में एक अध्याय है दैनिक जीवन में विज्ञान। मैं चाहता हूं कि इसे उद्धृत करके बताऊं कि यह कितना हानिकारक आख्यान प्रस्तुत करता है। ऐसे लापरवाह कथनों को क्या कहिए कि "भारतीय जीवन पद्धति आदि काल से विज्ञान आधारित रही है।" तो फिर राहू-केतु इतनी मजबूती से क्यों जड़े जमाए हैं? क्यों सूर्य व चंद्रग्रहण के समय लोग बाहर नहीं निकलते? क्यों ग्रहणों के समय सूतक लगता है?

हल करने में कर पाएं। दरअसल कुन के मुताबिक विज्ञान कर्म का उद्देश्य वर्तमान पैराडाइम को नई-नई परिस्थितियों में लागू करके उसे विस्तार देना है।

क्या ये पाठ्यपुस्तकें कुनवादी संदर्भ में फिट बैठती हैं?

बिखराव

संभवतः इस पुस्तक के अध्याय अलग-अलग लेखकों द्वारा लिखे गए हैं और अंत में किसी संपादक ने उन्हें क्रमिकता की दृष्टि से देखा नहीं है। इसलिए सरल मशीन नामक अध्याय में गुरुत्व बल वगैरह की बात कर ली गई है जबकि बल के बारे में अध्ययन अगले अध्याय में किया जाता है। यह हाल कई जगह है। सूक्ष्मजीवों की चर्चा (अध्याय 8) होने से पहले ही विद्यार्थियों को सूचित कर दिया जाता है कि विषाणु सजीव और निर्जीव की योजक कड़ी हैं (अध्याय 6)। पता नहीं ऐसा क्या मानकर और किस उद्देश्य से किया जाता है। प्रोकैरियोट्स (जीवाणु समेत) और यूकैरियोट्स को भी पहले ही निपटा दिया गया है।

प्रकाश और छाया की बात करते-करते अचानक हम सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण के बारे में पढ़ने लगते हैं। छाया के साथ और भी बहुत कुछ करने को था जिसे छोड़ दिया गया है। जैसे छाया की साइज का वस्तु की साइज से क्या संबंध है, वस्तु और प्रकाश स्रोत की दूरी और वस्तु व पर्दे की दूरी से क्या सम्बंध है, छाया और उपछाया क्यों बनती हैं, क्या छाया रंगीन भी हो सकती है वगैरह।

इस प्रकार की लापरवाही की वजह से जानकारी काफी बिखर गई है।

एक अच्छा प्रयास यह किया गया है कि जगह-जगह पर भारतीय वैज्ञानिकों के योगदान को रेखांकित किया गया है। मगर इसमें थोड़ी ज्यादती हो गई है। एक तो असंबंधित स्थानों पर भारतीय वैज्ञानिक चिपका दिए गए हैं। विज्ञान के मामले में किसी वैज्ञानिक का योगदान उस समय के ज्वलंत सवालों के संदर्भ में ही समझा व आंका जा सकता है। किसी एक वैज्ञानिक को उठाकर यह कह देना पर्याप्त नहीं होता कि "उन्हें भारत के आइंस्टाइन कहना उपयुक्त है।" भौतिकी के मूल कण, बोस-आइंस्टाइन सांख्यिकी, बोस-आइंस्टाइन संघनन, पदार्थ की पांचवीं अवस्था (पहले तो कहा था कि पदार्थ की चार अवस्थाएं होती हैं) वगैरह गूढ़ बातें कक्षा 6 के विद्यार्थियों के मन में क्या बिंब निर्मित कर सकती हैं?

यही स्थिति अन्य वैज्ञानिकों की भी है। आखिर हम इन वैज्ञानिकों की बात करके क्या बताना चाहते हैं। यही ना कि भारतीय वैज्ञानिकों ने भी विज्ञान की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बेहतर होता यदि भारतीय वैज्ञानिकों को लेकर एक अध्याय तैयार किया जाता, जिसमें बताया जा सकता था कि समग्र विज्ञान की हलचल में इनका योगदान क्या रहा। यहां तो विद्यार्थियों को यह पढ़ लेना है कि खुराना ने "प्रोटीन संश्लेषण में न्यूक्लिओटाइड की भूमिका को स्पष्ट किया" अथवा सतीश माहेश्वरी ने "डकवीड (लीमनेसी कुल का सबसे छोटा पुष्पीय पौधा) की एम्ब्रियोलॉजी पर अनुसंधान किया" और "पुंकेसर कल्चर तकनीक का उपयोग... किया।" और तो और उन्होंने 'सिगनल ट्रांसडक्शन मेकेनिज़्म इन प्लांट्स' नामक एक किताब भी लिखी या शिप्रा गुहा मुखर्जी ने "फूलों के पुंकेसर का कल्चर करके अगुणित पादप उत्पादन" का आविष्कार किया। कहीं ऐसा न हो कि बच्चों के लिए इनकी महानता इनकी अबूझता का पर्याय बनकर रह जाए।

सवालों की प्रकृति

अध्यायों के अंत में विद्यार्थियों के लिए सवाल दिए गए हैं। सभी सवाल पाठ में पढ़ी गई जानकारी को याद करवाने के लिए हैं। इनके उदाहरणों में जाने की जरूरत नहीं है। आखिर कुन के परिप्रेक्ष्य में देखें तो भी एक पैराडाइम को

आत्मसात करने का अर्थ यही है कि आप उसे किसी नई परिस्थिति में लागू कर पाएं, करने की कोशिश कर पाएं। मगर यह पुस्तक ऐसा कोई मौका नहीं देती।

एक सवाल जिसके बारे में मुझे लगा था कि वह काफी सोचने की मांग करता हैः

''परपोषी एवं परजीवी में क्या अंतर है?'' (अध्याय 2, लघु उत्तरात्मक प्रश्न 2)

मगर मुझे बाद में समझ में आया कि यह एक गलतफहमी का शिकार है। यहां परपोषी host के लिए तथा परजीवी parasite के लिए प्रयुक्त किया गया है। वास्तव में मानक शब्दावली के हिसाब से परपोषी का मतलब heterotroph होता है।

जगह-जगह पर गलत सूचनाएं, जानकारियां भी दी गई हैं।

एक बार फिर चंद उदाहरणों का सहारा ले सकते हैं। फूलगोभी को फूल कहना (अध्याय 1, पृ. 5 सारणी 1.4), ''बीजांकुर के पश्चात नवोद्भिद मृदा से विभिन्न तत्वों को अवशोषित कर बड़े होते हैं'' (अध्याय 2, पृ. 11), सरल मशीन और जटिल मशीन की परिभाषा (अध्याय 11, पृ. 94), अध्याय 14 (पृ. 119) पर विद्युत धारा की परिभाषा- जैसे नदी में पानी का प्रवाह होता है जिसे हम जल धारा कहते हैं। उसी प्रकार विद्युत के प्रवाह को विद्युत धारा कहते हैं।

एक उदाहरण और इसका संबंध विज्ञान की विधि के एक महत्वपूर्ण घटक से है मॉडल बनाना। वैज्ञानिक प्रायः यथार्थ का मॉडल बनाकर उसे समझने का प्रयास करते हैं। मॉडल यथार्थ को हूबहू प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उसके कुछ लक्षणों का प्रतिरूपण होता है।

उदाहरण का संबंध पदार्थ की अवस्थाओं से है (अध्याय 5, आओ पदार्थ को जानें)। इसमें पदार्थ की तीन अवस्थाओं ठोस, द्रव और गैस के बीच अंतर बताते हुए कुछ चित्र पेश किए गए हैं (चित्र क्र. 5.2-ब, 5.3-ब, 5.4-ब और 5. 5)। ये चित्र वास्तव में इन तीन अवस्थाओं के मॉडल्स हैं। इन चित्रों के माध्यम से बताया गया है कि ठोस में कण बहुत पास-पास रहते हैं, द्रवों में थोड़े दूर-दूर रहते हैं और गैसों में बहुत दूर-दूर रहते हैं। मगर इन चित्रों में ठोस, द्रव और गैस अवस्था में समान आयतन में कणों की जो तुलनात्मक संख्याएं बताई गई हैं, वे वास्तविकता से मेल नहीं खातीं। इन चित्रों को देखकर लगता है कि ठोस से द्रव बनते समय आयतन में बहुत अधिक वृद्धि होगी जबकी द्रव से गैस बनते समय इतनी अधिक वृद्धि नहीं होगी। और तो और अलग-अलग चित्रों में कणों की साइज भी बदल गई है। यह अवस्था परिवर्तन की समझ को भ्रमित करने का काम करता है, जो वैसे ही भ्रामक है।

और अंत में

रोचक बात यह है कि इस पुस्तक में एक अध्याय है दैनिक जीवन में विज्ञान। मैं चाहता हूं कि इसे उद्धृत करके बताऊं कि यह कितना हानिकारक आख्यान प्रस्तुत करता है। ऐसे लापरवाह कथनों को क्या कहिए कि ''भारतीय जीवन पद्धति आदि काल से विज्ञान आधारित रही है।" तो फिर राहू-केतु इतनी मजबूती से क्यों जड़े जमाए हैं? क्यों सूर्य व चंद्रग्रहण के समय लोग बाहर नहीं निकलते? क्यों ग्रहणों के समय सूतक लगता है?

विज्ञान को यदि मात्र कुछ सुविधाएं उत्पन्न करने का साधन मान लिया जाए, तो बात अलग है मगर यदि विज्ञान को लगातार बढ़ते ज्ञान व समझ के रूप में लिया जाए तो एक अलग ही नजरिया उभरता है। इस पुस्तक में विज्ञान का एक जड़ नजरिया पेश किया गया है जो इस गूढ़ वाक्य में कैद हो जाता हैः ''प्रकृति के अन्वेषण एवं उससे प्राप्त सुव्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।" इसमें यह बिलकुल स्पष्ट नहीं होता कि प्रकृति का अन्वेषण कई तरह से संभव है। विज्ञान एक खास तरह का अन्वेषण है जिसकी अपनी विधियां हैं, कसौटियां हैं, सही-गलत के फैसले करने के आधार व तौर-तरीके हैं, आगे बढ़ने के रास्ते हैं और सबसे बड़ी बात कि उसमें ज्ञान के किसी भी पड़ाव पर

पहुंचकर हम सब कुछ जान लेने का दावा नहीं करते और न ही अंतिम सत्य को पाना विज्ञान का मकसद है। और पुस्तक तो इस वाक्य के दूसरे हिस्से (उससे प्राप्त सुव्यवस्थित ज्ञान) को भी ठीक से प्रस्तुत नहीं कर पाई है।

हो सकता है कि आप अपने जीवन में उन सुविधाओं का उपयोग करते हों जो वैज्ञानिक अन्वेषण से उपजी हैं। इससे आपके दृष्टिकोण का कोई सम्बंध नहीं है। और ऐसा भी नहीं है कि इस पुस्तक के लेखक इस बात से अनभिज्ञ हैं। अध्याय 15 (दैनिक जीवन में विज्ञान) में खंड 15.2 (विज्ञान का अध्ययन हमारे लिए क्यों आवश्यक है) से स्पष्ट है कि लेखक इस बात से परिचित हैंः

1. व्यक्ति रूढ़िवादी विचारों से दूर हटता है।
2. व्यक्ति में स्वतंत्र चिंतन की प्रकृति का विकास होता है।
3. अपने आसपास की घटनाओं, समस्याओं, तथा क्रियाकलापों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है।
4. जीवन में आने वाली समस्याओं का क्रमबद्ध ढंग से हल करने की क्षमता विकसित होती है।
5. किसी समस्या का समाधान नहीं होने पर धैर्यपूर्वक असफलता के कारणों को पता लगाकर पुनः कार्य करने की क्षमता का विकास होता है।
6. सत्य, परख (शायद यह शब्द सत्यपरक होगा) एवं अंध विश्वास मुक्त विचारों का दृढ़ीकरण होता है।
7. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है।"

और यह भी बताया गया है कि वैज्ञानिक किस तरह कार्य करते हैंः

''समस्या की पहचान
संबंधित तथ्यों को एकत्रित कर उनका वर्गीकरण करना
परिकल्पना का निर्माण
प्रयोगों द्वारा परिकल्पना की सत्यता की जांच
निष्कर्ष के आधार पर सिद्धांत एवं नियम बनाना।"

दिल पर हाथ रखकर कहिए कि इनमें से किस चीज का विकास इन किताबों का अध्ययन करके होता है या होने की संभावना है। ◆

लेखक परिचय : एकलव्य संस्था के साथ लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। विज्ञान शिक्षण के प्रति प्रतिबद्धता उनके लेखन एवं शिक्षणशास्त्रीय पद्धतियों में दिखाई देती है। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के साथ जुड़कर भी विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काफी काम किया है। इस कार्यक्रम में किए गए काम को संदर्भ पुस्तिका 'मिडिल स्कूल रसायन' एवं शिक्षण अनुभवों को 'जश्ने तालीम' किताब में प्रकाशित कर सबके साथ साझा किया है।

विज्ञान बनाम धर्मावरण व अज्ञान!

दिलीप सिंह तंवर

राजस्थान राज्य सरकार द्वारा अभी हाल में कक्षा एक से आठवीं तक की नई पुस्तकें बना कर प्रकाशित की गईं हैं। यह पिछले कुछ वर्षों मे तीसरी बार है जब राजस्थान में नई पुस्तकें बना कर स्कूलों में लागू की गईं हैं। पहले राजस्थान राज्य की पुस्तकें, फिर एनसीईआरटी की पुस्तकें इसके बाद 'आईसीआईसीआई फाउंडेशन फॉर इन्क्लूसिव ग्रोथ' की मदद से एसआइईआरटी द्वार बनाई गई पुस्तकें और अब फिर से नई पुस्तकें। सवाल उठता है कि आखिर इतने कम समय मे पुस्तकों में इतनी बार बदलाव के मायने क्या हैं? क्यों बार-बार इन पुस्तकों को बदला जा रहा है? क्या समाज में इन बदलावों को लेकर आम लोगों की कोई राय है, इस पर मैंने कुछ लोगों से अलग-अलग मौकों पर इसकी जरूरत और औचित्य पर बात की। जिसमें शिक्षक भी शामिल थे। उनकी प्रतिक्रियाएं कुछ इस तरह थीं-

''अरे, अभी तो पुस्तकें बदली थीं, फिर से नई बनाने की जरूरत क्या पड़ गई। सब पैसे खाने के खेल हैं। मंत्री को मोटी रकम मिली होगी।''

''ये तो होना ही था भाई साहब, जब भी सरकार बदलती है तो किताबें भी बदलती हैं। ये तो हर सरकार करती है। यह सरकार भी किताबों में अपना एजेंडा रखेगी।''

''नई किताबें बनाने से क्या होगा, मास्टर तो स्कूल में पढ़ाते ही नहीं हैं। कितनी भी किताबें बना लो जब तक स्कूल में पढ़ाई नहीं होगी तब तक कुछ नहीं हो सकता।''

''यह... (प्रधानमंत्री जी का नाम) युग चल रहा है। तो किताबें भी ऐसी होनी चाहिए जो हमारे बच्चों को महान संस्कृति से परिचित कराएं, उन्हें संस्कारवान बनाएं। आप देख रहे हो आजकल के बच्चे कैसे होते जा रहे हैं। इतिहास का कोई ज्ञान ही नहीं है उन्हें। पश्चिम का असर खत्म करना है तो यह जरूरी है। अजी साहब अकबर को महान पढ़ाते आ रहे हैं अब तक। राणा प्रताप जी को भूलते जा रहे हैं।

इन लोगों से की गई बातचीत में एक बात सामने आई कि इन्हें यह पता ही नहीं था कि सरकार ने कोई नई किताबें बनाई भी हैं और न ही इन्होंने ये किताबें देखी थीं, लेकिन जब मैंने उनसे इस पर राय जाननी चाही तो उनकी कोई न कोई राय जरूर थी। इसका आशय है कि आमजन इसका संबंध किसी न किसी रूप मे सरकारों के इरादों से जोड़कर देख पा रहें हैं। किसी भी लोकतांत्रिक समाज के लिए अच्छी बात है कि आम लोग सरकारों द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों पर अपनी राय रखते हैं और उसके पीछे के कारणों की अपनी तरह से व्याख्या भी करते हैं।

अब, अगर आप इन आमजनों की राय पर ध्यान दें तो कोई भी राय किताबों की प्रकृती या गुणवत्ता के बारे में नहीं है बल्कि सरकार के द्वारा किताब बनाने के निर्णय के बारे मे हैं। सिर्फ एक व्यक्ति की राय वर्तमान सरकार के संदर्भ में गुणवत्ता के संभावित मानदण्डों की ओर इशारा जरूर करती है कि इस सरकार के लिए गुणवात्ता के अनुसार अच्छी किताबें कैसी होनी चाहिए।

यदि आमजन को इन पुस्तकों के बनाने के निर्णय, निर्णय के कारणों और इनकी गुणवत्ता को जानने के मौके मिले होते तो संभवतया वे ज्यादा बेहतर राय रखते कि आखिर इन किताबों के बनाए जाने का निर्णय सही था या गलत, किताबें बच्चों व समाज के लिए बेहतर हैं या नहीं। और इस आधार पर वे सरकार का मूल्यांकन भी कर पाते। लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं।

शिक्षा किसी भी समाज की दिशा व दशा को सीधे तौर पर प्रभावित करती है और किताबें शिक्षा का (कम से कम हमारे देश में) एक मूलभूत औजार हैं। तो जरूरी है कि किताबें बनाने से पूर्व उस पर पर समाज में पर्याप्त बहस हो व बनाने के बाद उनकी समाज में व्यापक समीक्षा हो।

चूंकि, न तो ऐसा किया गया और न इन सवालों के जवाब ही मिले। इसलिए अब जरा इन किताबों पर नजर डाल कर देखते हैं, क्या वे इन सवालों के कोई जवाब देती हैं या उनसे इन सवालों के जवाब ढूंढे जा सकते हैं? और देखते हैं कि क्या वहां इनके औचित्य व जरूरत के बारे में कुछ कहा गया है?

चित्र-1

प्राक्कथन

बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा में परिवर्तन होना जरूरी है, तभी विकास की गति तेज होती है। विकास में सहायक कई तत्त्वों के अलावा शिक्षा भी एक प्रमुख तत्त्व है। विद्यालयी शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिए पाठ्यचर्या को समय–समय पर बदलना एक आवश्यक कदम है।

इन किताबों के 'प्राक्कथन' (देखें चित्र-1) की पहली दो पंक्तियों में दो महत्वपूर्ण बातें कही गईं हैं। पहली, 'बदली हुई परिस्थितियां' जिनकी वजह से शिक्षा में परिवर्तन की जरूरत हुई तथा दूसरी, शिक्षा में यह परिवर्तन 'विकास की गति' को तेज करेगा। यहां एक बात तो स्पष्ट होती है कि किताबें एक राजनैतिक औजार हैं क्योंकि इनका संबंध विकास से है। लेकिन प्राक्कथन जो बात नहीं बताता वह है, पहली कि वे बदली हुई परिस्थितियां कौनसी हैं? आखिर वह क्या है जो बदल चुका है? और दूसरी कि विकास के मायने और इसकी दिशा क्या है? तीसरी, शिक्षा को प्रभावशाली बनाने का मतलब क्या है? और किस पर प्रभाव?

कहीं ये बदली हुई परिस्थितियां बीजेपी की सरकार का बनना तो नहीं! पहले एक पार्टी की सत्ता थी, अब दूसरी पार्टी सत्ता में आई है। तो क्या सरकार का बदलना इतना महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है कि किताबें बदलना जरूरी हो जाता है। यदि यह बात सही है तो फिर उस व्यक्ति की राय पर फिर से नजर डालिए जिसमें उसने एक युग का जिक्र किया है, तो आपको विकास के मायने, उसकी दिशा और 'प्रभावशाली बनाने' का मतलब साफ दिखाई दे जाएगा।

यहां यह साफ हो चुका है कि शिक्षा और शिक्षा से जुड़े मसले जैसे कि किताबों का बनना राजनीतिक विषय हैं और इनका संबंध विकास (की दिशा व दशा) से है तो फिर इनके संदर्भ में किए जाने वाले परिवर्तन बेहद महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इनका सीधा संबंध समाज की दशा व दिशा से होता है, लोगों की जिंदगी से जुड़ा होता है। ऐसे में इन परिवर्तनों के बारे में न सिर्फ जन-साधारण की राय जानना बल्कि उन पर व्यापक व तार्किक बहस का होना लाजमी हो जाता है। ताकि जन-साधारण भी यह जान सकें कि आखिर राजनैतिक सत्ताएं शिक्षा व पुस्तकों में किस तरह का परिवर्तन करने जा रहीं हैं? और इस परिवर्तन के द्वारा किस तरह के और किसके विकास की कोशिश कर रही हैं? उस विकास की दिशा क्या होने वाली है? उसका हमारे समाज और जीवन पर क्या असर होने वाला है? इत्यादि। जैसा कि अन्य विकसित देशों मे होता भी है और एनसीएफ 2005 के समय हमारे यहां भी किया गया था। लेकिन जब सरकारें दबे-छुपे तरीके से बंद दरवाजों के पीछे, तयशुदा लोगों के साथ मिलकर बिना व्यापक जन-भागीदारी व बहस के इस तरह के परिवर्तन करती हैं तो संदेह होता है कि निश्चित ही वहां कुछ ऐसा होने जा रहा होता है जिसे वो सबके सामने नहीं लाना चाहते क्योंकि वे शिक्षा को एक राजनैतिक औजार के रूप में इस्तेमाल कर न सिर्फ राजनैतिक फायदा उठाने की कोशिश कर रही होती हैं बल्कि हमारी जिन्दगियों को दूर तक प्रभावित भी कर रही होती हैं। जबकि शिक्षा का सत्ताधारी लोगों द्वारा खुद के फायदे के लिए औजार के रूप में इस्तेमाल किसी भी समाज के लोगों को बेहतर जिंदगी मुहैया नहीं करा सकता।

पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा का सबसे बेहतर तरीका होता है कि उन पुस्तकों को उस राष्ट्र के संवैधानिक मूल्यों व शिक्षा के मूलभूत सिद्धांतों के आधार पर परखा जाए। मेरी भी मंशा ऐसा ही करने की थी लेकिन जब इन पुस्तकों को देखा तो न सिर्फ निराशा हुई बल्कि अफसोस और झल्लाहट भी हुई कि राजस्थान जैसे देश के सबसे बड़े राज्य में अचानक मेधा का अकाल कैसे हो गया! ये किताबें न सिर्फ शिक्षा के मूलभूत सिद्धांतों के आधार पर बेहद खराब और फूहड़ हैं बल्कि सामाजिक सिद्धांतों के नजरिए से बेहद खतरनाक और अन्यायपूर्ण भी हैं।

पुस्तकों में सामाजिक विविधता और समावेशिता

किसी भी पाठ्यपुस्तक को एक अच्छी पुस्तक होने के लिए जरूरी है कि उनमें समाज के हर हिस्से का प्रतिनिधित्व हो, जाति, धर्म, लिंग, वर्ग के आधार पर पुस्तक भेद-भाव न करे। प्रतिनिधित्व से आशय है कि पुस्तक के निर्माण करने वाले समूह से लेकर पुस्तक में आए पात्र व उनकी संस्कृती (रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, कला, इत्यादि) को पुस्तक मे सम्मानजनक जगह मिले। ऐसा करने की कई वजहों में से बेहद खास है- बच्चों के सीखने के लिए जरूरी है कि उन्हें पुस्तक में उनकी जिंदगी व आस-पास की झलक मिले, वे अपनी जिंदगी से उसका जुड़ाव महसूस कर पाएं। उन्हें लगे कि अरे ये तो मेरे ही या मेरे आस-पास के बारे में है।

पुस्तकों (कक्षा 3 से 5) को देखने पर पहला झटका लगता है जब पुस्तक निर्माण समिति के 26 सदस्यों में से एक भी नाम मुस्लिम, सिख या ईसाई समुदाय से नहीं है। इसी तरह जब कक्षा तीन की पर्यावरण अध्ययन की पुस्तक को देखा तो उसमें कुल 20 पाठ हैं और इन बीस पाठों में कुल 46 पात्रों या व्यक्तियों के नाम आए हैं जिनमें सिर्फ एक नाम (गुरमीत) को छोड दें तो कोई भी नाम इन तीन समुदायों से नहीं है। इन सारे पाठों में कई बार रिश्तों का जिक्र है जिनमें एक बार भी अब्बू, अम्मी, आपा, बीजी, जैसे सम्बोधन नहीं हैं। इसे देखकर आसानी से कहा जा सकता है कि एक लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था में सत्ता किन के हाथों में हैं, किस वर्ग विशेष के लोग उस सत्ता का दुरुपयोग करते हुए इन किताबों में किस वर्ग के प्रतिनिधित्व को वर्चस्व दिला रहे हैं। जब ये किताबें समाज के अन्य वर्गों के पात्रों के नामों को जगह नहीं दे सकतीं तो इनसे उनकी संस्कृती के प्रतिनिधित्व की उम्मीद तो कतई नहीं की जा सकती। और तो और किताबें इस वर्ग विशेष के वर्चस्व के लिए बेहद उतावली व बैचेन दिखाई देतीं हैं। इसकी बानगी इसी कक्षा तीन की पुस्तक के दूसरे ही पाठ में देखी जा सकती जहां मित्रता नामक पाठ में तीन उद्धरण दिए गए हैं जिसमें पहला किस्सा 'कृष्ण' और 'सुदामा' का है, दूसरा एक कहानी है जो एक बच्चे जिसका नाम 'गोपाल' और 'गाय' के बारे में है और तीसरा उद्धरण 'राणा प्रताप' व 'स्वामिभक्त चेतक घोड़े' का है। इस पाठ में जाति, धर्म, लिंग, आयु, वर्ग और नस्ल के भेद से परे मित्रता के लिए आवश्यक इंसानी बराबरी और वैचारिक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान के बारे में एक शब्द भी न कह कर ये तीन उद्धरण रख दिए गए हैं। इन किताबों (कक्षा 3 से 5) में गाय एक मात्र ऐसा जीव है जिसके सबसे ज्यादा चित्र हैं व उसके नाम का सबसे अधिक बार जिक्र आया है। इस तरह के तमाम उद्धरणों व प्रतीकों का वजह बेवजह खूब इस्तेमाल किया गया है जिन्हें देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि किसी एक वर्ग विशेष से जुड़े इन प्रतीकों (कृष्ण, गाय, राणाप्रताप, मंदिर में हाथ जोड़ना, 'कमल पर स्वस्वती विराजती है', 'महात्मा जी के आगे सब नतमस्तक हो गए', पतंजली ऋषी का अष्टांग योग, ऋषी चरक, ऋषी सुश्रुत, ऋषी कणाद, स्वामी विवेकानंद, वीर सावरकर, इत्यादि) के द्वारा लेखक क्या कहना चाहते हैं। इस सबके लिए किताबों मे एक उतावलापन भी साफ-साफ दिखाई देता है।

किताब में भोजन की विविधता को लेकर एक पाठ है जो कि एनसीईआरटी की पुस्तकों के पाठ से नकल करके बनाया गया है। इस नकल करने में उस पाठ की पूरी आत्मा को न सिर्फ मार दिया गया है बल्कि खाने को लेकर विविधता की समझ और उसके प्रति स्वीकार्यता का सत्यानाश करके रख दिया है। कक्षा तीन, चार व पांच में आए पाठों को देखने से लगता है कि पुस्तक मांसाहार के विचार भर से भयभीत है। इसलिए न तो उसके चित्र हैं, न तालिकाओं में कोई जगह। और तो और रही-सही कसर यह कह कर पूरी कर दी है, ''हमें अपने भोजन में विभिन्न फल, दालें, सब्जियां, दूध आदि का उपयोग करना चाहिए''(कक्षा-3 पृष्ठ 62) तथा कक्षा पांच में मांसाहार को सीमित खाने की शिफारिश की गई है।

लेखकों के नाम तथा पुस्तकों में आए पात्रों के नाम, कहानियां व उद्धरण और शाकाहारी खाने का आग्रह! क्या आपको इनमें कोई संबंध दिखाई देता है? क्या अब समझ आया 'बदली हुई परिस्थितियां' और 'विकास के मायने'???

यहां ऊपर उठाए गए सवालों में से एक सवाल का कुछ हद तक जवाब मिलता है कि ये किताबें किसके द्वारा और किसके विकास को केंद्र में रखकर तैयार की गईं हैं और इनका इरादा क्या है। साथ ही एक युग की बात कहने वाले व्यक्ति की राय भी ठीक प्रतीत होती दिखाई दे रही है।

लैंगिक समता बनाम पुरुष वर्चस्व

इन किताबों की शुरुआत में 'शिक्षकों के लिए' के अंतर्गत जेंडर संवेदनशीलता को ध्यान में रखने की बात की गई है। लेकिन इन किताबों को देखने पर इनकी पुरुषवादी मानसिकता की बैचेनी व छटपटाहट साफ दिखाई देने लगती है। किताबों में जेंडर संवेदनशीलता के मुद्दे को बहुत ही भोंडे, हास्यास्पद व स्त्रीविरोधी तरीके से रखा गया है। देखने पर लगता है जैसे कि लेखकों को कहा गया हो कि पुस्तकों में महिलाओं को स्थान देना है, इसलिए स्थान तो दे दिया पर लेखक व लेखिकाओं की पुरुषवादी मानसिकता, नजरिया और लैंगिक समझ का दिवालियापन इनमें साफतौर पर दिखाई देता है, और अंततः किताबें पुरुषत्ववादी नजरिए को ही पुनर्पोषित व पुनर्बलित कर रहीं हैं। पुस्तको में महिलाओं का चित्रण कपड़े ढोते हुए, बर्तन साफ करते हुए, खाना पकाते हुए, सिर पर पानी भरकर लाते हुए, कुएं और हेंडपंप से पानी भरते हुए, नर्स, मजदूरी करने जैसे कामों में किया गया है। जबकी खेल के चित्रों, तकनीकी कामों से महिलाएं नदारद हैं। हां सिर्फ प्रतिनिधित्व को दिखाने भर के लिए संतोष यादव, कल्पना चावला आदि को किताब में जगह दी गई है। जहां-जहां पारिवारिक कामों का विवरण आया है वहां-वहां खाना बनाना व परोसना जैसे काम में महिलाओं का ही विवरण है। जो कि पारंपरिक पुरुष वर्चस्ववादी नजरिए को ही पोषित करते हैं और महिलाओं को पुरुष की अधीनस्थ के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। पुस्तकों का पुरुषत्व तब और भी साफ नजर आता है जब वे खुद हास्यास्पद, बेशर्मी से शिक्षक निर्देश में कहतीं हैं "... सामूहिक अवसरों पर व होटल, रेस्तरां में खाना पकाने का कार्य पुरुषों द्वारा भी किया जाता है, इसको समझाते हुए छात्रों में जेंडर संवेदनशीलता विकसित करें" (कक्षा-3, पृ. 71)। इसी तरह एक नारे में कहती हैं "एक बेटी पढ़ेगी, सात पीढ़ी तरेगी" (कक्षा-4, पृ. 9)। इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि लेखकों का समूह जेंडर के विषय को प्रभुत्व व अधीनस्थ (authority and subordination) के नजरिए से देखने में या तो अक्षम है या फिर उनके अंदर बैठा पुरुषत्व यही करना व कहना चाहता है। मुझे दूसरी बात ज्यादा ठीक लगती है। जहां न सिर्फ स्त्री को पुरुष वर्चस्व के नजरिए देखा जा रहा है बल्कि उसी को और मजबूत भी किया जा रहा है कि एक महिला की भूमिका बच्चे पैदा करने, उनका लालन पालन करने, घर की देखभाल व चौका-बासन करने की है।

अब तक की बात के आधार पर देखें तो ये पुस्तकें हिन्दुवादी और पुरुषवादी नजरिए से इसी विचारधारा को पुनर्बलित व पुनर्पोषित करने के मकसद से तैयार की गईं हैं। तो यहां यह और भी साफ हो जाता है कि इन पुस्तकों में विकास के मायने क्या हैं तथा इनमें किसके और कैसे विकास की अपेक्षा की गई है। यह और भी अफसोसजनक हो जाता है जब ये किताबें इनके निर्माण में यूनिसेफ जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था के तकनीकी सहयोग का हवाला देतीं हैं जो कि सारी दुनिया में समावेशी व समान शिक्षा की वकालत करने का दावा करती है।

सीखना बनाम सूचना

'प्राक्कथन' मे कहा गया है, *"वर्तमान में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 तथा निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के द्वारा यह स्पष्ट है कि समस्त शिक्षण क्रियाओं में 'विद्यार्थी' केन्द्र में है। हमारी सिखाने की प्रक्रिया इस प्रकार हो कि विद्यार्थी स्वयं अपने अनुभवों के आधार पर समझ कर ज्ञान का निर्माण करे। उसके सीखने की प्रक्रिया को ज्यादा से ज्यादा स्वतंत्रता दी जाए, इसके लिए शिक्षक एक सहयोगी के रूप में कार्य करे। पाठ्यचर्या को सही रूप में पहुंचाने के लिए पाठ्यपुस्तक महत्वपूर्ण साधन है।"* (पर्यावरण अध्ययन, प्राक्कथन, पृ. iii) इसके अनुसार विद्यार्थी केंद्र में है, किन्तु ऊपर जो कहा गया है उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि किस वर्ग विशेष

के विद्यार्थी को केंद्र मे रखा गया है और किस वर्ग के बच्चों के अनुभवों को स्थान दिया गया है। यह भी कहा गया है कि पाठ्यपुस्तक महत्वपूर्ण साधन हैं और शिक्षक सिर्फ एक सहयोगी। जबकि 'शिक्षकों के लिए' शीर्षक के अंतर्गत कहा गया है, ''पुस्तक साधन मात्र है, अतः शिक्षक पर्यावरण अध्ययन हेतु निर्धारित पाठ्यक्रम को आधार बनाकर कक्षा में गतिविधियों को आयोजित करें'' (पर्यावरण अध्ययन, शिक्षकों के लिए, पृ. vi)। जो पुस्तक 'प्राक्कथन' व 'शिक्षकों के लिए' जैसे महत्वपूर्ण कथनों मे वैचारिक संगतता नहीं रख सकती, जो यहीं पर विरोधाभासी हो जाती है। तो आप खुद अंदाजा लगा सकते हैं कि उस पुस्तक की विषयवस्तु व उसके शिक्षण शास्त्रीय क्रम व ढांचे का क्या हाल होगा।

पुस्तक के पाठों का ढांचा कुछ इस तरह है जिसमें पाठ को 'सोचिए और लिखिए', 'सोचिए और बताइए', 'सोचिए और चर्चा कीजिए', 'तालिका देखकर बताइए', 'इसे भी करिए', 'हमने सीखा', आदि शीर्षक व उप-शीर्षकों में बांटा गया है। अधिकांश पाठों की शुरुआत बच्चों के वास्तविक अनुभवों के बजाय एक मनगढ़ंत, उबाऊ और बोझिल कहानी या विवरण से होती है। पाठों के बीच-बीच में जहां बच्चे को बताने या लिखने को कहा गया है वहां बहुत सारी जगहों पर बच्चे के लिए लिखने की कोई जगह ही नहीं दी गई। तो क्या सचमुच किताब बच्चों के अनुभवों को शामिल कर उन्हें ज्ञान निर्माण प्रक्रिया मे भागीदार बनाने की गंभीर कोशिश कर रही है? बिलकुल नहीं! चूंकि ज्ञान निर्माण में शामिल करने व सक्षम बनाने के लिए और शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर बनी कुछ अच्छी किताबों मे तालिकाएं होती है और कुछ इसी तरह के शीर्षक व उप-शीर्षक होते हैं जहां बच्चों के अपने अनुभव संसार को शामिल किया जाता है। इसलिए इन किताबों में भी इसी तरह के शीर्षक व उप-शीर्षक रख तो दिए हैं पर वे बहुत ही अव्यवस्थित हैं, उनमें विषय विशेष की ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया की क्रमबद्धता और संगतता दिखाई नहीं देती। ये सब बहुत ही बेतरतीब तरीके से बस रखे भर गए हैं। किताबें सीखने में आत्मनिर्भरता लाने की बजाए सूचनाओं व आग्रहों से भरी पड़ी हैं। सिर्फ तालिकाएं और 'सोचिए और लिखिए' जैसे शीर्षक डाल देने भर से बच्चे उस किताब के केंद्र मे नहीं आते। उसके लिए विषयवस्तु को किताबों में उस विशेष ज्ञानानुशासन के अनुसंधान के तरीकों, कर्म व सत्यता की कसौटी के अनुसार बहुत ही व्यवस्थित व क्रमबद्ध तरीके से रखा जाता है। इन किताबों में सूचनाओं की बमबारी इस कदर होती है कि बच्चे तो बच्चे कई जगह तो शिक्षक भी उस बमबारी (शून्यवाद, माध्यमिक सिद्धान्त, वैशेषिक सूत्र, आदि) से घायल हो जाएं। ज्यादा बेहतर होगा कि इन किताबों को शिक्षाशास्त्रीय व सीखने के मनोविज्ञान के आधार पर देखा ही न जाए, क्योंकि ऐसा कुछ इनमें है ही नहीं। किताबों में लेखकों के ज्ञान के उबाल का असर बड़ा साफ दिखता है। किसी भी किताब में बच्चों को पदार्थों के रासायनिक नामों के प्रतीकों तक से परिचित नहीं कराया गया पर अचानक विज्ञान की किताबों में रासायनिक समीकरण आ धमकते हैं। अब भला कोई इनके बारे में क्या कहे!

लेकिन जो इन किताबों में है उसे देखने की कोशिश करते हैं यानी- सूचनाएं। सूचनाएं अर्थात शब्द, और शब्द मायने आवधारणा। यदि सूचना को ही सीखना मान लें तो इन किताबों से जो सिखाने की कोशिश की गई है उसके कुछ उदाहरणों के माध्यम से यह देखते हैं कि वे क्या सिखाती प्रतीत हो रही हैं। और समाज में किस तरह के विकास का सपना संजोए हुए हैं।

किताब बताती है कि ज्यादा गर्मी से ज्यादा वाष्पीकरण होता है और कहती है, ''वाष्पीकरण के कारण ही कपड़े सूखते हैं'' (कक्षा-4; पृ.49)। वाष्पीकरण के दो प्रकार होते हैं, एक तो तरल पदार्थ के उबलने पर ताप क्वथनांक बिन्दु (100 डिग्री) पर पहुंचता है तथा दूसरा जो कि क्वथनांक से कम ताप पर होता है। दूसरे में ताप एक मात्र कारण नहीं होता, उसके साथ और भी निर्धारक तत्व होते हैं। किताब इसे भ्रामक तरीके से प्रस्तुत कर रही है। लेखक महोदय शायद भूल रहे हैं कि हवा में आर्द्रता की मात्रा और उसकी आर्द्रता ग्रहण करने की सामर्थ्य भी कोई चीज होती है। यही वजह है कि सर्दियों में तापमान कम होने (15 से 20 डिग्री) के बावजूद कपड़े सूख जाते हैं जबकि बारिश के मौसम में तापमान अधिक होने (25 से 30 डिग्री) पर भी कपड़ों को सूखने में ज्यादा वक्त लगता है।

(कक्षा-5, पाठ-10) किताब कहती है कि पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता है, पानी के बहने की दिशा ऊपर से नीचे ही नहीं होती वह तो किसी भी दिशा मे बह सकता है नीचे से ऊपर भी जा सकता है। उसका बहना ऊंचाई

से नहीं बल्कि दाब (बल) से निर्धारित होता है। बहने की दिशा हमेशा अधिक दाब से कम दाब की ओर होती है। अब चाहे यह दाब (बल) गुरुत्व बल के कारण लगे या फिर बिजली की मोटर से या फिर हेंड पंप से। जबकि इन्हीं किताबों मे कहा गया है कि वायु हमेशा अधिक दबाव से कम दबाव की ओर बहती है!

विज्ञान की कक्षा 6 की किताब में वस्तुओं को पदार्थ कहा जा रहा है- हमारे आस-पास की अनेक वस्तुएं जिनमें भार होता है (क्या कोई ऐसी भी वस्तु होती है जिसमें भार नहीं होता?) और स्थान घेरेती हैं उन्हें पदार्थ कहते हैं (पृ.37)। यह बात तो समझ आती है की वस्तुएं पदार्थ या पदार्थों से मिलकर बनी होती हैं पर यहां तो वस्तु ही पदार्थ है!

इसी किताब में बताया गया है कि लकड़ी, पैड-पौधे के तिनके, पत्तियां जैसी ''हल्की'' वस्तुएं पानी मैं तैरतीं हैं (कक्षा-6, पृ. 25)। यहां सवाल हल्की या भारी होने का नहीं घनत्त्व का है। सुईं, आलपिन तो हल्की होती हैं पर डूबती हैं, जबकि जहाज बहुत भारी होता है पर तैरता है। इसी पाठ में बताया गया है 'रेत व रुई को डिब्बे में भरो, कौन भारी है? रेत, रुई से भारी है। इसलिए रेत का द्रव्यमान अधिक है। अतः हम कहते हैं रेत का घनत्व अधिक है (कक्षा-6, पृ. 25)'। इसके अनुसार भार=द्रव्यमान=घनत्व अर्थात भार=घनत्व। यहां बहुत ही भ्रामक तरीके से घनत्व को सीधे-सीधे भार से जोड़ दिया गया है। अब यदि कोई वस्तु भारहीन अवस्था में है तो क्या उसमें घनत्व नहीं होगा। या फिर, हम जानते हैं कि जब विषवुत रेखा से ध्रुवों की ओर जाते हैं तो वस्तुओं के भार मे कमी आती है। तो क्या विषवुत रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर वस्तुओं का घनत्व भी कम होता है?

चित्र-2

चित्र-3

विज्ञान की ही किताब में बल के पाठ में एक शीर्षक है- 'बल की अवधारणा'। इस पाठ में बजाय यह बताने के कि बल क्या होता है, यह बताया जा रहा है कि बल से ये होता है, बल से वह होता है लेकिन पूरे पाठ मे कहीं भी यह नहीं बताया जाता कि बल क्या है (कक्षा-6, पृ. 103)। यदि यह बताना बस की बात नहीं थी तो फिर शीर्षक, 'बल की अवधारणा' रखने की क्या जरूरत थी, कुछ और ही रख लिया जाता। इससे इतना तो स्पष्ट है कि लेखक के मन में अवधारणा की अवधारणा क्या रही होगी! आगे हद तो तब होती है जब पाठ यह बताता है कि बल वस्तु की स्थिति में परिवर्तन कर सकता है अर्थात बल लगाने पर स्थिर वस्तु गतिशील हो सकती है- (कक्षा-6, पृ. 104)। अरे जनाब, गतिमान होने के लिए बल की जरूरत होती है यह बात तो सही है लेकिन बल से चीजें गतिमान होती हैं यह ठीक नहीं। जरा किसी दीवार, पहाड़ या जमीन पर जी भर के बल लगा कर देखो! अंदाजा हो जाएगा कि बल तो लगा, पर इनको गतिमान कर पाए या नहीं। पृथ्वी की सतह पर रखी हर चीज पर गुरुत्व बल हर समय लग रहा होता है, पर वे सारी चीजें गतिशील अवस्था में नहीं होतीं।

विज्ञान की किताब के एक अन्य पाठ में गति व चाल को एक दूसरे का पर्यायवाची बना दिया गया है- जब वस्तु की गति तीव्र होती है तो हम कहते हैं कि उसकी चाल अधिक है तथा जब वस्तु की गति धीमी होती है है तो हम कहते हैं कि उसकी चाल कम है- (कक्षा-7, पृ. 105) मनमर्जी से कहीं भी गति को चाल व चाल को गति लिखा गया है। पता ही नहीं चलता की कहां तो 'स्पीड' की बात हो रही है कहां 'मोशन' की। जबकि विज्ञान का हर विद्यार्थी जानता है कि इन दोनों में क्या अंतर होता है। इन दोनों अवधारणाओं का घालमेल लेखकों की समझ व मंशा को बताता है कि वे क्या कर रहे है।

सारी दुनिया जानती है कि गिलास और मोमबत्ती वाले प्रयोग से यह सिद्ध नहीं होता कि वायु में 21 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। मोमबत्ती के बुझने के बाद गिलास में पानी का चढ़ना और ज्यादा मोमबत्तियां जलाने पर ज्यादा पानी चढ़ना (50-60 प्रतिशत तक) बताता है कि इसकी मुख्य वजह हवा का ऊष्मीय प्रसार है। इसके बावजूद भी इस प्रयोग को विज्ञान की किताब में जगह मिली हुई है (कक्षा-6, पृ. 140)। जबकि अनेक पत्रिकाओं में इस प्रयोग के बारे में लिखा जा चुका है। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं किताबों में, पर ये उदाहरण काफी हैं जो बताते है कि इन किताबों को कितने सक्षम व गंभीर लोगों ने तैयार किया होगा। क्या यह सब सिर्फ अज्ञानतावश हुआ है या जानबूझ कर? इससे इस बात का अंदाजा भी लगता है कि ये किताबें किस तरह के विकास के लिए तैयार की गई होंगी और उसके पीछे के मकसद क्या हैं?

'प्राक्कथन' में यह भी गया है, *''पाठ्यपुस्तक तैयार करने में यह ध्यान रखा गया है कि पाठ्यपुस्तक सुगम, सुरुचिपूर्ण, सुग्राह्य एवं आकर्षक हों, जिससे विद्यार्थी सरल भाषा, विषयवस्तु, चित्र, विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से इनमें उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात कर सके।''* पाठ्यपुस्तक में दिए गए चित्रों पर पर्सपेक्टिव, कैमरा एंगल, कलर पेलेट, बेलेन्स, प्रपोर्शन आदि को लेकर बात करना या कहना तो बहुत दूर की कौड़ी है। इन चित्रों को यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये चित्र बच्चों जैसे हैं, क्योंकि बच्चे इनसे कहीं बेहतर चित्र बनाते हैं। ये चित्र (देखें, चित्र-2, 3, 4, 5, 6 व 7) तो भद्दे, भोंडे, फूहड़ और खराब हैं। इससे बेहतर होता कि चित्रों की जगह खाली छोड दी जाती वहां बच्चे खुद बेहतर चित्र बना लेते। यह हाल तब है जब राजस्थान में एक से बढ़कर एक चित्रकार मौजूद हैं। इन्हें देखकर एक बार फिर से किताबों की गंभीरता का अंदाजा लगता है।

चित्र-4

चित्र-6

चित्र-5

इसके अलावा एक और बात। हालांकि यह मेरे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं पर यहां इसका जिक्र जरूरी है। अब तक मेरा मानना था कि शिक्षक व अधिकारियों की वर्तनी बहुत अच्छी होती है। क्योंकि जब भी कोई स्कूल जाता है तो बच्चों से भी और शिक्षकों से भी वर्तनी ही लिखवाकर देखा जाता है। लेकिन इन किताबों मे वर्तनी की गलतियों की भरमार है। यही तो एक चीज थी 'शुद्ध वर्तनी' जो इन्हें शायद अच्छे से आती थी, लेकिन ये किताबें यहां भी मात खा गईं।

शायद इस सबके बाद आपको अंदाजा लग गया होगा कि ये किताबें किस परिस्थिती के बदलने पर लिखी गईं हैं। इनमें विकास के मायने क्या हैं और किसके विकास की बात करती हैं तथा विकास की दिशा किस तरफ है। ◆

चित्र-7

चित्र 4.6 सार्वजनिक स्थान पर सफाई करते हुए

लेखक रिचय : टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशियल साइंस के विद्यार्थी हैं और पिछले दो दशकों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। कई सरकारी व गैर सरकारी, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ शिक्षाक्रम व शिक्षण सामाग्री निर्माण, बाल-साहित्य निर्माण, शिक्षक शिक्षा व प्रशिक्षण, प्रकाशन, पुस्तक-समीक्षा, लेखन जैसे कार्य करते रहे हैं।

पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तकें

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के नजरिए से विश्लेषण

अम्बिका नाग

भारत में स्कूली शिक्षा कार्यक्रमों के अंतर्गत पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण पद्धतियों को बनाने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ) 2005 दस्तावेज एक खाका प्रदान करता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार, शिक्षा के उद्देश्य हमारे संवैधानिक मूल्यों के आधार पर तय किए गए हैं (एनसीएफ 2005, अध्याय-1, पृ. 12)। यह दस्तावेज कहता है कि हम सारे बच्चों को जाति, धर्म संबंधी अंतर, लिंग और असमर्थता संबंधी चुनौतियों से निरपेक्ष रखते हुए स्वास्थ्य, पोषण और समावेशी स्कूली माहौल मुहैया कराएं जो सीखने में मदद करे और उन्हें सशक्त बनाए (एनसीएफ 2005, अध्याय-1, पृ. 7-8)। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में कहा गया है कि ज्ञान को विद्यालय के बाहरी जीवन से जोड़ना, पढ़ाई रटन्त प्रणाली से मुक्त, पाठयचर्या पाठ्यपुस्तक केन्द्रित न होकर बच्चों को चहुंमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए, परीक्षा को लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना तथा एक ऐसी अधिभावी (over - riding) पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएं समाहित हों (एनसीएफ 2005, अध्याय-1, पृ. 5)।

पाठ्यपुस्तकें कैसी हों?

एनसीएफ कहता है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाएं कि वे बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षाई अनुभव आयोजित करें ताकि सारे बच्चों को अनुभव मिल पाएं (एनसीएफ 2005, सार संक्षेप, पृ. viii)। आगे यह दस्तावेज कहता है कि ज्ञान को सूचना से अलग करने की आवश्यकता है और प्रत्येक साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिए कि बच्चों को खुद को अभिव्यक्त करने में, वस्तुओं के इस्तेमाल करने में, अपने परिवेश की खोजबीन करने में मदद मिल सके, साथ ही कक्षा के अनुभवों को इस प्रकार आयोजित किया जाए कि उन्हें ज्ञान सृजित करने का अवसर मिले (एनसीएफ 2005, सार संक्षेप, पृ. ix)। एनसीएफ के अनुसार रचनात्मक सीखना पाठ्यक्रम का एक हिस्सा होना चाहिए। पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों के लिए ऐसे अवसर और परिस्थितियां सृजित करें जो विद्यार्थियों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करें और उनमें रचनात्मकता और सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करें। नींव का मजबूत और स्थिर होना आवश्यक है, अतः प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के बच्चों को खोजने और तर्कसंगत सोच विकसित करने के मौके उपलब्ध कराने चाहिए जिससे कि वे अवधारणाओं, भाषा, ज्ञान, जांच और सत्यापन प्रक्रिया पर पर्याप्त ज्ञान आत्मसात कर सकें। (एनसीएफ 2005, अध्याय-3, पृ. 56) अर्थात, पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से निम्नलिखित बातें सुनिश्चित हों-

1. जाति, धर्म, लिंग, असमर्थता निरपेक्ष, समावेशी स्कूली माहौल मुहैया करवाना।
2. बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षाई अनुभव मुहैया करवाना।
3. ज्ञान को सूचना से अलग करना।

4. बच्चों को स्वयं ज्ञान सृजित करने का अवसर मुहैया करवाना।

प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम की बात करते हुए यह दस्तावेज (एनसीएफ 2005, अध्याय-3, पृ.55) कहता है कि-

5. बच्चा अपने चारों ओर की दुनिया में नई-नई चीजें खोजने का आनंद लेने और उनके साथ सामंजस्य बैठाने में व्यस्त रहे।
6. विद्यार्थी सूक्ष्म अवलोकन, वर्गीकरण आदि मूल ज्ञानात्मक कौशल हासिल कर सके।
7. भारत जैसे बहुलतावादी समाज में यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रीय और सामाजिक समूह पाठ्यपुस्तकों से अपने आपको जोड़ पाएं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, पाठ्यचर्या के पांच तरह के वैध मानकों की ओर इंगित करती है- संज्ञानात्मक वैधता, प्रक्रिया की वैधता, ऐतिहासिक वैधता, पर्यावरण संबंधी वैधता, नैतिक वैधता (एनसीएफ 2005, अध्याय-3, पृ. 54)। यहां इन्हीं वैधताओं को आधार बनाकर राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा का प्रयास किया गया है। यह तर्कसंगत भी है क्योंकि पाठ्यपुस्तकों के 'प्राक्कथन' में स्पष्ट रूप से लिखा है, ''एन.सी.एफ. 2005 की इन्हीं भावनाओं को आत्मसात करते हुए तथा इसके व्यापक फलक को समाहित करते हुए राजस्थान की प्राथमिक कक्षाओं के लिए पर्यावरण-अध्ययन विषय का यह नया पाठ्यक्रम विकसित किया गया है।'' (अपना परिवेश, पर्यावरण अध्ययन, कक्षा 3, प्राक्कथन, पृ. iii)

समीक्षाः

प्रस्तुत लेख में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में वर्णित निर्देशक सिद्धांतों और प्राथमिक स्तर पर विज्ञान (पर्यावरण अध्ययन) शिक्षण के लिए तय मानदंडों के आधार पर एक फ्रेमवर्क बना कर नई पाठ्यपुस्तकों की पड़ताल करने का एक प्रयास किया गया है।

1. संज्ञानात्मक वैधता - इसके अंतर्गत हम देखेंगे कि विषयवस्तु, प्रक्रिया, भाषा व शिक्षा- शास्त्रीय अभ्यास आयु के अनुरूप हों और बच्चे की संज्ञानात्मक पहुंच के भीतर आएं।

(क) विषयवस्तु - विषय की प्रकृति से अनुरूपता, अवधारणाओं की तर्क संगत क्रमिकता और एकरूपता, तथ्यात्मक खरापन, वस्तुनिष्ठता, बच्चों के पूर्व ज्ञान और परिवेश से जुड़ाव को देखने का प्रयास किया गया।

पाठ्यपुस्तक में कई ऐसे उदाहरण हैं, जहां पर्यावरण अध्ययन विषय की प्रकृति के महत्वपूर्ण उद्देश्य- ज्ञानात्मक कौशलों के विकास के मौकों को पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया है, अधिकतर पाठों में जानकारी देने का प्रयास किया गया है, जिसे बच्चे रट लें। ऐसी ही जानकारी के आधार पर हर पाठ में ''सोचिए और बताइए'' शीर्षक से कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनका उद्देश्य शायद यह है कि बच्चों को चिंतन और विश्लेषण के मौके मिलें लेकिन उदाहरण के साथ, देखें-

इस उद्धरण (चित्र-1) में यह मान्यता प्रकट होती है कि विद्यार्थी को महाराणा प्रताप के बारे में पूर्वज्ञान है,और उसी को आधार बना कर नयी जानकारी जोड़ने का प्रयास हो, जबकि ऐसा राजस्थान के क्षेत्र विशेष में ही संभव है। पाठ

चित्र-1

स्वामीभक्ति

महाराणा प्रताप का स्वामीभक्त व प्रिय घोड़ा चेतक था। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप को सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने के लिए वह एक पैर से जख्मी होने के बावजूद भी उन्हें बहुत दूर तक लेकर दौड़ा। रास्ते में पड़ने वाले बरसाती नाले को उसने एक छलांग में पार कर लिया। महाराणा को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के बाद चेतक ने अपने प्राण त्याग दिए।

14

चित्र-2

इतिहास में चेतक जैसी स्वामीभक्ति और मित्रता की मिसाल कम ही देखने को नहीं मिलती है। इसी कारण महाराणा प्रताप के साथ–साथ चेतक को हमेशा याद किया जाता है। दिल्ली से उदयपुर चलने वाली एक रेलगाड़ी का नाम भी चेतक एक्सप्रेस रखा गया है।

सोचिए और बताइए

- चेतक कौन था?
- चेतक का महाराणा प्रताप से क्या संबंध था?
- चेतक को हम क्यों याद करते हैं?

इतनी जल्दी में लिखा गया है कि वाक्य भी गड़बड़ा गए हैं, दूसरे पैराग्राफ (चित्र-2) में - 'स्वामीभक्ति और मित्रता की मिसाल कम ही देखने को नहीं मिलतीहै' - लिख दिया गया है जबकि संदर्भ से पता चल रहा है कि 'नहीं मिलती है' के स्थान पर 'मिलती है' होना चाहिए।

उपरोक्त पाठ में तीनों सवाल सीधे-सीधे मूल पाठ में से पूछ लिए गए हैं, जिनमें विद्यार्थी के लिए कोई चिंतन या विश्लेषण करने की गुंजाइश नहीं है।

सूचनाओं और जानकारियों से भरी पुस्तक में कहीं-कहीं विषयवस्तु को सरल बनाने के चक्कर में खामियां छोड़ दी गईं हैं। ऐसे कई उदाहरण आगे दिए गए हैं। कक्षा 4 की पुस्तक में पाठ 13 में पृ. 78 पर (चित्र-3) जीभ पर स्वाद के क्षेत्रों का भ्रामक चित्र दिया गया है। ''इस मानचित्र की उत्पत्ति 19वीं सदी के आखिरी वर्षों में किए शोध कार्य की गलत व्यारख्या करने से हुई थी।''[1] किन्तु लगता है लेखक इस जानकारी से अनभिज्ञ हैं और परिणाम स्वरूप इन पाठ्यपुस्तकों में इसे पुनः दोहरा दिया गया है।

चित्र-3

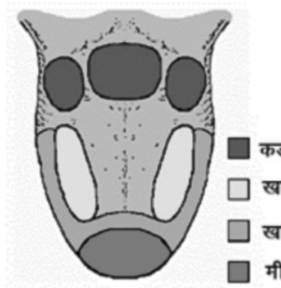

चित्र 13.10 जीभ पर स्वाद ग्रंथियाँ

(ख) प्रक्रियाः सीखने की प्रक्रिया में कक्षा के अनुभवों को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए कि उन्हें (बच्चों को) ज्ञान सृजित करने के मौके मिलें लेकिन प्रस्तुत पाठ्यपुस्तकों में सुझाई गई गतिविधियां बहुत कम हैं, ज्यादातर अवधारणाएं सूचना के रूप में दे दी गई हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा 5 का दसवां पाठ : 'जल ऊपर से नीचे की ओर'- पूरे पाठ में सिंचाई के साधनों की बात होती है, लेकिन बाल केन्द्रित गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम का दावा करने वाली किताब में इस पाठ में करने योग्य एक भी गतिविधि नहीं सुझाई गई है। इसी प्रकार से हम कक्षा 3 की किताब का छठा पाठ देख सकते हैंः 'देखो, जंगल अजब निराला'। इस पाठ में 'स्थलीय आवास' के संबंध में कुछ इस तरह जानकारी दी गई हैः ''हम जिस आवास में रहते हैं वह स्थालीय आवास है। इस आवास में वायु, प्रकाश इत्यादि पर्याप्त मात्रा में होता है। ये आवास वातावरण के आधार पर अनेक प्रकार के हो सकते हैं। जहां बर्फ हो व सर्दी अधिक रहे, उसे शीत आवास कहते हैं। इसी तरह जहां जल की कमी हो, उसे सूखा या शुष्क आवास कहते हैं। इसी प्रकार जहां वातावरण में पर्याप्त जल व अनुकूल ताप हो, उसे सम आवास कह सकते हैं।'' इस जानकारी को रटने के अलावा बच्चे के पास कोई और तरीका नहीं रह जाता।

(स) भाषाः पाठ में कठिन शब्दावली का उपयोग बारंबार किया गया है। उदाहरण के लिए कक्षा 3 की पुस्तक में बारहवां पाठ (चित्र-4) - हमारे गौरव-I - देखें:

इस पाठ में *रसायन शास्त्री, प्रतिभाशाली, वेदांगों, कालांतर, बौद्ध दर्शन, बौद्धमत, दीक्षित, धातुकर्म, उल्लेखनीय, शून्यवाद, महायान संप्रदाय, माध्यमिक सिद्धान्त, राष्ट्रीय एकात्मकता* आदि कई शब्द आए हैं जो काफी क्लिष्ट हैं, साथ ही तीसरी कक्षा के स्तर पर ये अवधारणाएं काफी कठिन प्रतीत होती हैं। चूंकि पाठ का उद्देश्य वैज्ञानिक के कार्यों से विद्यार्थियों को अवगत करना है, तो भाषा को सरल रखा जाना बहुत जरूरी लगता है।

चित्र-4

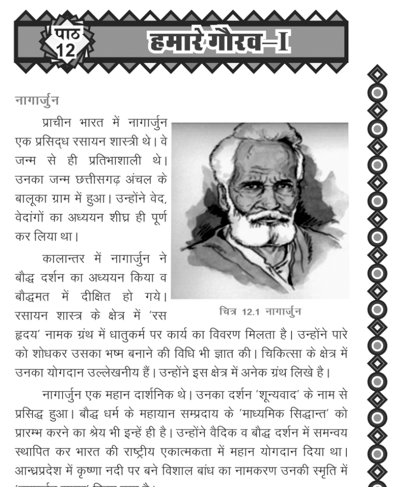
पाठ 12

हमारे गौरव–I

नागार्जुन

प्राचीन भारत में नागार्जुन एक प्रसिद्ध रसायन शास्त्री थे। वे जन्म से ही प्रतिभाशाली थे। उनका जन्म छत्तीसगढ़ अंचल के बालूका ग्राम में हुआ। उन्होंने वेद, वेदांगों का अध्ययन शीघ्र ही पूर्ण कर लिया था।

कालान्तर में नागार्जुन ने बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया व बौद्धमत में दीक्षित हो गये। रसायन शास्त्र के क्षेत्र में 'रस हृदय' नामक ग्रंथ में धातुकर्म पर कार्य का विवरण मिलता है। उन्होंने पारे को शोधकर उसका भष्म बनाने की विधि भी ज्ञात की। चिकित्सा के क्षेत्र में उनका योगदान उल्लेखनीय हैं। उन्होंने इस क्षेत्र में अनेक ग्रंथ लिखे है।

चित्र 12.1 नागार्जुन

नागार्जुन एक महान दार्शनिक थे। उनका दर्शन 'शून्यवाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय के 'माध्यमिक सिद्धान्त' को प्रारम्भ करने का श्रेय भी इन्हें ही है। उन्होंने वैदिक व बौद्ध दर्शन में समन्वय स्थापित कर भारत की राष्ट्रीय एकात्मकता में महान योगदान दिया था। आन्ध्रप्रदेश में कृष्णा नदी पर बने विशाल बांध का नामकरण उनकी स्मृति में 'नागार्जुन सागर' किया गया है।

79

1. 'स्वाद में क्या रखा है', स्निग्धा दास, शैक्षिक संदर्भ, अंक 10, मूल अंक 67, पृ. 71-80

इस जीवनी के बाद - 'चर्चा कीजिए' शीर्षक के अन्तर्गत प्रश्न दिया गया है *'नागार्जुन की जीवनी से हमें क्या सीख मिलती है?'*

शून्यवाद और माध्यमिक सिद्धान्त को समझे बिना इस प्रश्न का उत्तर दे पाना मुश्किल है, एक संभावना यह लगती है कि विद्यार्थी को इसे रटना होगा। और इस तरह यह पाठ एनसीएफ 2005 की मूल बात, शिक्षा को रटंत प्रणाली से दूर करने के विरुद्ध जाता प्रतीत होता है।

चित्र-5

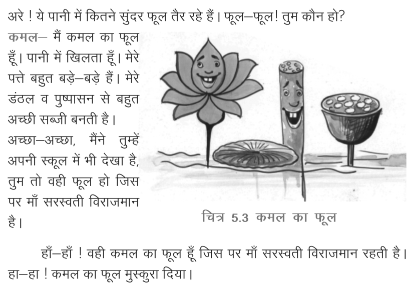
अरे ! ये पानी में कितने सुंदर फूल तैर रहे हैं। फूल–फूल! तुम कौन हो?

कमल– मैं कमल का फूल हूँ। पानी में खिलता हूँ। मेरे पत्ते बहुत बड़े–बड़े हैं। मेरे डंठल व पुष्पासन से बहुत अच्छी सब्जी बनती है।

अच्छा–अच्छा, मैंने तुम्हें अपनी स्कूल में भी देखा है, तुम तो वही फूल हो जिस पर माँ सरस्वती विराजमान है।

चित्र 5.3 कमल का फूल

हाँ–हाँ ! वही कमल का फूल हूँ जिस पर माँ सरस्वती विराजमान रहती है। हा–हा ! कमल का फूल मुस्कुरा दिया।

2. प्रक्रिया की वैधता- पाठ्यपुस्तकों को जब हम इस नजरिए से देखें कि विद्यार्थी को ऐसे मौके मिलें जो उसे वैज्ञानिक जानकारी के पुष्टीकरण व सृजन करने की ओर बढ़ाएं तो हम पाते हैं कि कई ऐसे मौके आते हैं जहां ऐसी अस्थाओं व मिथकों को पाठों में स्थान दिया गया है जिन्हें वैज्ञानिक रूप से ज्ञात करने और पुष्टीकरण करने की संभावना नहीं है। जैसेः कक्षा 4 की पुस्तक में पांचवें पाठ ''फूल ही फूल'' में कमल के फूल पर मां सरस्वती का विराजमान होना! (चित्र-5) इस तरह यह पुस्तक तर्क संगत सोच विकसित करने के मौके उपलब्ध कराने और अवधारणाओं, जांच और सत्यापन प्रक्रिया पर आधारित ज्ञान निर्माण कर पाने में असफल दिखाई देती है और लिखे गए को हूबहू मान लेने की वकालत करती दिखती है।

3. ऐतिहासिक वैधता- पाठ्यपुस्तकों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ जानकारी देने के पीछे उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी ये समझ सकें कि समय के साथ-साथ विज्ञान की अवधारणाएं कैसे विकसित हुईं। पर्यावरण अध्ययन (ईवीएस) की किताबों में ऐतिहासिक सूचनाएं भी इस तरह से आती हैं कि विज्ञान की अवधारणाएं कैसे विकसित होकर हमारे आज के ज्ञान तक पहुंची, इस बात को स्पष्ट नहीं कर पातीं और अपने मूल उद्देश्य (विज्ञान को समाज से जोड़ने) को पूरा नहीं कर पातीं। जैसे- कक्षा 5 के पहले पाठः रिश्तों की समझ- में वंशानुगत लक्षणों की बात करते हुए पाठ में बिना किसी भूमिका से एकदम से 'आओ और जाने' शीर्षक के अंतर्गत आनुवांशिकी के जनक- मेंडल और भारतीय वैज्ञानिक हरगोविंद खुराना के बारे में 4 लाइनें दी गई हैं, जिनमें उनके काम को लेकर कोई ऐसी जानकारी नहीं जिससे पाठ को जोड़ा जा सके। ''ग्रेगर जॉन मेण्डल ने मटर के पौधे पर बहुत से प्रयोग कर वंशानुगत के नियम प्रतिपादित किए इसलिए उन्हें आनुवांशिकी का जनक कहा जाता है।'', ''डॉ. हरगोविन्द खुराना ने वंशानुगत नए गुणों के निर्धारण हेतु कई शोध पत्र लिखे। इस कार्य हेतु इन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।'' जबरदस्ती ठूंसी गई इस जानकारी पर रिक्त स्थान की पूर्ति व अभ्यास प्रश्न भी दिया गया है, ''एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गुणों का जाना... कहलाता है।'', ''आनुवांशिकता के क्षेत्र में कार्य करने वाले किन्हीं दो वैज्ञानिकों के नाम लिखिए'' (पृ. 8)। जिसे रटने के अलावा बच्चे के पास कोई उपाय नहीं।

4. पर्यावरण संबंधी वैधता- पाठ्यपुस्तकों से अपेक्षा है कि ज्ञान को स्थानीय व वैश्विक पर्यावरण के संदर्भ में रखें ताकि विज्ञान, तकनीक व समाज के पारस्परिक संवाद के क्रम में मुद्दों को समझा जा सके। जब इस वैधता पर हम पुस्तकों को देखते हैं तो इनमें स्वच्छता, शौचालय, कचरा प्रबंधन आदि पर विस्तार से बात की गई है जिससे यह उम्मीद दिखती है कि इन मुद्दों पर समाज में संवाद कायम होगा और बदलाव भी आ सकेगा। लेकिन इनके महत्व को स्थापित करने हेतु उचित तर्क चुने जाने चाहिए थे। उदाहरण के लिए, कक्षा 5 का पाठ 4 - मिलकर करें सफाई- ''गंगा की भाभी का कहना है कि जब हम घर एवं बाहर घूंघट निकालते हैं तो खुले में शौच कैसे जाएं'' तो सवाल ये उठता है कि ऐसी महिला जो घूंघट नहीं निकालती या कोई पुरुष है तो उसके लिए क्या ये इतना ही जरूरी नहीं है कि वह खुले में शौच न जाए? शौचालय के उपयोग के लिए जो तर्क गढ़े गए हैं, वो उचित प्रतीत नहीं होते।

5. नैतिक वैधता- पाठ्यपुस्तकें ''हमारे गौरव'' घटक के रूप में अनेक प्रसिद्ध व्यक्तित्वों के बारे में बताते हुए नैतिक उपदेशों व मूल्यों को प्रोत्साहित करने का प्रयास करती हैं। हमने संवैधानिक मूल्यों को पाठ्यपुस्तकों में देखने का प्रयास किया जो स्पष्ट रूप से एनसीएफ 2005 में भी परिभाषित किए गए हैं- जैसे जाति, धर्म, लिंग, असमर्थता निरपेक्ष, समावेशी स्कूली माहौल मुहैया करवाना।

(क) धर्म और जाति के आधार पर समावेशः

कक्षा 5, पाठ 6 'बीज बना पौधा' बीज का अंकुरण पढ़ाने के लिए पृष्ठ 29 पर बछबारस त्यौहार की बात की गई है लेकिन राजस्थान के कई प्रदेशों में विशेषकर आदिवासी बहुल इलाकों में इसके बारे में कोई नहीं जानता। अगले ही पृष्ठ 30 पर नवरात्रि में मंदिर/देवरों में ज्वारा उगाने की बात है। 'बीजों का इधर उधर फैलना' (पृ. 32) में ''मीरा ने पीपल का पौधा मंदिर की दीवार पर देखा...'', इस तरह पूरा पाठ अन्य धर्मों में पौधों के महत्व का कोई जिक्र नहीं करता, जबकि उनका भी समावेश यहां होना चाहिए- जैसे जैन और बौद्ध धर्म में अशोक, साल और वटवृक्ष, इस्लाम में कुरान में कई पौधों तुलसी, अंजीर, मेहंदी, अनार, जैतून आदि का महत्व बताया गया है, वहीं ईसाई धर्म में भी बबूल, जैतून, अंजीर, अंगूर और नारंगी के पौधों को किसी न किसी महत्व के साथ दर्शाया गया है। बड़, पीपल, शीशम, इमली, आम, नीम और बेर आदि को सिक्ख धर्म में विशेष महत्व दिया गया है।

कक्षा 4 के पाठ 5 'फूल ही फूल' में कमल के फूल के साथ मां सरस्वती का जिक्र है, लेकिन हम जानते हैं कि जैन, बुद्ध, सिक्ख, में भी कमल के फूल का विशेष महत्व बताया गया है।

पाठ 7 'वृक्षों की महिमा' वट सावित्री के व्रत पर बड़ के पेड़ की पूजा से पाठ की शुरुआत होती है और फिर आंवला नवमी पर आंवले और दशामाता पर पीपल की पूजा द्वारा पेड़ों के महत्व की बात होती है। फिर अमृता देवी विशनोई की कहानी है। फिर 'सोचिए और बताइए' शीर्षक के अंतर्गत प्रश्न भी है- ''आपके आस पास किन-किन पेड़-पौधों की पूजा की जाती है?'' पूजा प्रार्थना की एक पद्धति है जो खास धर्म में की जाती है; दूसरे धर्मों में पूजा नहीं की जाती। जब हम यह सवाल पूछ रहे होते हैं तो उस खास पद्धति के बारे में बात कर रहे होते हैं और बाकी को छोड़ दे रहे होते हैं। यह हमारी सांस्कृतिक बहुलता के खिलाफ जाता प्रतीत होता है।

इस तरह लेखक एक संकुचित विचारधारा के साथ पुस्तक में तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए प्रतीत होते हैं।

(ख) लैंगिक समावेशः

कक्षा 3 का पाठ 3 'खेल-खेल में', कक्षा 4 का पाठ-4 : 'खेल प्रतियोगिता', कक्षा 5 का पाठ 5 : 'आओ खेलें खेल' सभी पाठों में जितने चित्र दिए गए हैं उनमें लड़कियों का प्रतिनिधित्व बेहद कम है वे कक्षा 5 में पहली बार ठीक से दिखाई देती हैं।

कुछ इसी तरह का चित्रण 'अलग अलग हैं सबके काम' (कक्षा 3, पाठ 18), 'खेती से खुशहाली' (कक्षा 5, पाठ 20), 'कपड़े की कहानी' (कक्षा 4, पाठ 21) में बयान होता है, सभी चित्रों में पुरुष दिखाए गए हैं लेकिन इसके विपरीत यदि कक्षा 3 में पाठ 7 और 8 में पानी भरने और कक्षा 3 में पाठ 10 और कक्षा 4 में पृष्ठ 64 पर खाना बनाने की गतिविधि के चित्र देखें तो उनमें लड़के दिखाई नहीं देते। इस तरह यह पाठ 'लड़कों के काम और लड़कियों के काम' की परंपरागत पितृ सत्तात्मक अवधारणा का प्रसार करते प्रतीत होते हैं।

(ग) असमर्थता निरपेक्षः

कक्षा 5 के पाठ 3 'कुछ खास हैं हम' दिव्याङ्ग बच्चों पर आधारित इस पाठ में सभी बच्चों को ब्रेल लिपि और सांकेतिक भाषा सिखाने का प्रयास किया गया है और उस पर आधारित गतिविधि भी दी गई है। कक्षागत स्तर पर भी यदि इस तरह की सांकेतिक भाषा के उपयोग के उचित अभ्यास के मौके दिए जाएं तो यह एक सराहनीय प्रयास हो सकता है जहां सभी बच्चे दिव्याङ्ग बच्चों से संवाद स्थापित कर सकेंगे। ◆

लेखिका परिचयः वनस्पति विज्ञान में पीएचडी हैं, लंबे समय तक स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी फाउंडेशन में विज्ञान की संदर्भ व्यक्ति के तौर पर कार्यरत।

English

साहित्य का मर्म होता है शब्दों की मदद से परिचित और अपरिचित अनुभव में गहराई लाना, सोचने और विश्लेषण के लिए नजरिए देना, जिन्दगी के मामूली प्रसंगों के लिए भी उत्साह एवं जोश भर देना। राजस्थान की अंग्रेजी पुस्तकों में ऐसा कुछ भी नहीं है। वे नीरस, उबाऊ एवं अनाकर्षक हैं। ये पुस्तकें अंग्रेजी सिखाने में विफल और बच्चों को आज की दुनिया की महत्वपूर्ण भाषा से दूर रखने में अत्यंत कामयाब रहेंगीं।

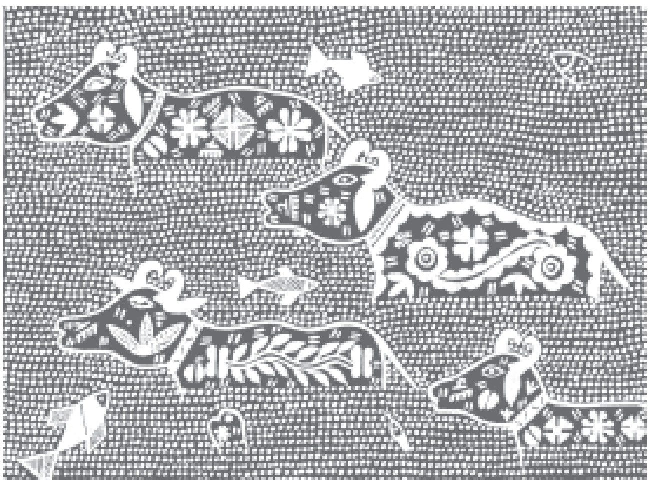

आलोचनात्मक चिंतन में नाकाम पाठ्यपुस्तकें

निवेदिता विजय बेदादुर

भारत में स्कूली शिक्षा पर पाठ्यपुस्तकों का वर्चस्व स्थापित है। पाठ्यपुस्तक संस्कृति की भारतीय स्कूली शिक्षा पर मजबूत पकड़ है व शिक्षक के काम को भी इसने जबरदस्त तरीके से अपने वश में कर रखा है। शिक्षाविद भी उन देशों का उदाहरण देकर इस बात को दोहराते रहे हैं, जिन्होंने पाठ्यपुस्तक संस्कृति विकसित करने की बजाए शिक्षकों के सशक्तिकरण का रास्ता चुना, ताकि वे कक्षा में पाठ्यपुस्तकों के बजाए अन्य संसाधनों का उपयोग कर सकें, मगर हम उस तरह की समग्र व्यवस्था से अभी दूर हैं। Position Paper National Focus Group on Teaching of English, P. 13-14)। पाठ्यपुस्तकों को लिखे जाते समय बहुत स्वाभाविक है कि उन पर लेखक के विचारों का रंग चढ़ जाए। पाठ्यपुस्तकें सांस्कृतिक कलारूप होती हैं और उनमें देश के मूल्य व संस्कृति विद्यमान रहते है। किन्तु हमारे जैसे विविधता भरे देश में उन पर अक्सर प्रभुत्वशाली समूहों के मूल्यों का रंग चढ़ा होता है। उनकी विषयवस्तु 'कुछ खास' प्रकार के मूल्यों को जीवन दर्शन के रूप में पेश कर रही होती है। यह बात शिक्षा के मूल मकसद के खिलाफ जाती है क्योंकि शिक्षा तो निर्णय लेने, अलोचनात्मक ढंग से विचार कर पाने तथा तार्किक व समावेशी बनने जैसी क्षमताओं का विकास करने वाली होती है।

जहां तक भाषा की पाठ्यपुस्तकों का सवाल है यह बात बहुत महत्व की हो जाती है। चूंकि भाषा एक अनुभव है और इसमें हम अपने अनुभवों को सहेजते हैं इसलिए हमें इस बात का विश्लेषण करने की जरूरत है कि पाठ्यपुस्तकें छात्रों द्वारा निर्मित किए जा रहे अर्थ पर किस तरह का असर डालती हैं और पाठ्यपुस्तकों में मौजूद नज़रिए से इसका किस प्रकार का रिश्ता बनता है। क्या यह आलोचनात्मक चिंतन, तर्क व निर्णय लेने की क्षमताओं के विकास को संभव बनाती हैं (NCF 2005; P. 13)? यह और भी जरूरी इसलिए हो जाता है क्योंकि पाठ्यपुस्तक को लेकर शिक्षकों का नज़रिया यह है कि इसमें लिखे शब्द ही सत्य हैं, इसके परे कुछ भी नहीं है!

दर्शन व पद्धति

राजस्थान की अंग्रेजी भाषा की पाठ्यपुस्तकों के 'प्राक्कथन' में इस बात का उल्लेख है कि वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (NCF 2005) पर आधारित हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा सीखने को लेकर सामाजिक-रचनावादी नज़रिए का समर्थन करती है जिसका आधार भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान व तंत्रिका तंत्र (न्यूरोलोजिकल) के क्षेत्रों में हुए शोध हैं। यह नज़रिया बच्चे को ऐसे सक्रिय सीखने वाले के रूप में देखता है जो अर्थ निर्माण के लिए अपने आस-पास की दुनिया का अन्वेषण कर रहा होता है और चार साल का होते-होते भाषाई दृष्टि से एक पूर्ण वयस्क बन चुका होता है (NCF 2005; P. 6, 12)। बच्चा भाषा व अवधारणात्मक समझ के पूर्वज्ञान के साथ स्कूल में आता है और शिक्षक को इसी ज्ञान को आधार बनाकर आगे सिखाने की जरूरत होती है। सामाजिक-रचनावादी (सोशियो-कंस्ट्रक्टविस्ट) नजरिए

का मानना है कि भाषिक निपुणता समूहों में सीखते हुए व सांस्कृतिक उपकरणों के जरिए अर्जित की जा सकती है तथा ऐसा करने के लिए एक ऐसे समृद्ध वातावरण की जरूरत होती है जिसमें भाषा अर्जन के लिए बहुत तरह के मौके हों और विभिन्न नजरियों को जांचने व तर्कपूर्ण निर्णय लेने के मौके हों। इस तरह देखें तो सामाजिक-रचनावादी (सोशियो-कंस्ट्रक्टविस्ट) नजरिया समावेशी है। हालांकि सरसरी तौर पर की गई पड़ताल से भी यह पता चल जाएगा कि यह पाठ्यपुस्तकें NCF 2005 के दर्शन व नजरिए को सिर के बल खड़ा कर देती हैं। वे सीखने को प्रोत्साहन (या उद्दीपन) की प्रतिक्रिया में हुई घटना मानने वाले युग में लौट गई हैं तथा रट्टामार तरीकों व सीखने को छोटे-छोटे अंशों में तोड़ने को बढ़ावा देने वाली हैं। वे शिक्षण को अभ्यास व कवायद के जरिए होने वाले व्यवहार में बदलाव के रूप में देखती हैं। वे बच्चे को खाली स्लेट के तौर पर देखती हैं तथा उसे बोलने, लिखने व व्यवहार करने के सही तरीके सिखाना जरूरी मानती हैं। भाषा सीखना संप्रेषण के उद्देश्य से प्राप्त किए जाने वाले कुछ कौशल मात्र को हासिल करना भर रह जाता है।

प्राक्कथन

क्या उद्देश्यों को निचले स्तर पर ले जाना इसका जवाब हो सकता है?

प्राक्कथन में राज्य में आरंभिक शिक्षा के स्तर पर अंग्रेजी सिखाने के पीछे का तर्क दिया गया है, उसमें कहा गया है कि अंग्रेजी हमारी आम बोल-चाल की भाषा है। पाठ्यपुस्तकें छात्रों को अंग्रेजी सीखने से संबंधित सभी क्षेत्रों में सक्षम बनाती हैं। इन क्षेत्रों को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है - सुनना, बोलना, पढ़ना व लिखना। किन्तु NCF 2005 द्वितीय भाषा सीखने के उद्देश्यों को दोहरे स्तरों पर व्याख्यायित करता है। पहला स्वाभाविक भाषा की तरह प्रवीणता हासिल करना और दूसरा अमूर्त स्तर पर विचार कर पाने व ज्ञान हासिल कर पाने के साधन के तौर पर। NCF इससे आगे बढ़कर यह भी कहता है कि भाषा सब कुछ सीखने का स्रोत है, यह समझ विकसित करने व ज्ञान रचने का माध्यम है (NCF 2005, P. 39)। अगर ज्यादातर विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम रहने वाली अंग्रेजी सहित सभी भाषाएं सीखने का उद्देश्य यह है तो फिर क्या अपने उद्देश्यों को इतने निचले स्तर पर तय करना उचित है कि उनसे भाषा की केवल आधारभूत क्षमताएं हासिल की जा सकें ताकि उसका इस्तेमाल आम बोल-चाल में किया जा सके? यह राज्य के पाठ्यपुस्तक मंडल द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तकें हैं और इन्हें वंचित समुदायों के बच्चे पढ़ते हैं, यह तथ्य उच्च शिक्षा व आर्थिक सशक्तिकरण हासिल करने की ख्वाहिश रखने वाले लोगों के संदर्भ में समान उपलब्धता के सवाल को क्या और भी विचारणीय नहीं बना देता?

पाठ्यपुस्तकों में उजागर होतीं रूढ़िगत मान्यताएंः

बच्चों व बचपन को लेकर मान्यताएं

बच्चों को अपूर्ण वयस्क माना गया है। वयस्कों की यह जिम्मेदारी है कि उन्हें नैतिकता सिखाएं। ज्यादातर पाठ बच्चों को सीधे-सीधे नैतिकता विषयक बातें सिखाते हैं जैसा कि नीचे दिए गए उदाहरणों से स्पष्ट होता हैः

बच्चों को पानी बर्बाद नहीं करना चाहिए, उन्हें साफ-सुथरा रहना चाहिए, उन्हें दूसरों की मदद करनी चाहिए आदि। अंग्रेजी भाषा की पाठ्यपुस्तक के उद्देश्य के बारे में NCF 2005 में कहा गया है कि इसे भाषा सीखने-सिखाने की एक संदर्भ पुस्तिका के रूप में होना चाहिए (Position Paper for English, page 13)। भाषा की पाठ्यपुस्तक सरकारी कार्यक्रमों की प्रचार सामग्री नहीं हो सकती। इसे भिन्न-भिन्न शैलियों, लेखों, विभिन्न परिस्थितियों में भाषा के उपयोगों आदि का अनुभव देने की जरूरत होती है। यहां कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं- स्वच्छ भारत अभियान, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान, सुकन्या समृद्धि, आरओई (शिक्षा का अधिकार कानून) तथा योग। इनके संदर्भ में उदाहरणों को देखा जा सकता हैः

Class 3 Page 38 -39 Swatch Bharat Abhiyan, Page 78 Little Pride, Page 82 Save the Girl Child
Class 4 Page 20 CWSN, Page 21 A Brave Tribal Girl
Class 5 Page 7 Let's Learn Pranayam, Pages 26-28 School is a Temple.

Class 6 Smart Village 17-18
Class 7 Page 9- 10 My Dream School (RTE)
Class 8: Pages 27 -28 Life at KGBV, page 31 Long Live Ladli

अगर पाठ्यपुस्तक को जागरूकता बढ़ाने की संदर्भ सामग्री के तौर पर तैयार किया जाता है तब भी इस जागरूकता को ऐसे सवालों के जरिए पैदा किया जाना चाहिए जो बच्चे को अपने परिवेश को आलोचनात्मक ढंग से देखने में मदद करें और उसे यह तय करने में मदद करें कि उसके लिए कौन सी योजनाएं बेहतर हैं। आलोचनात्मक चिंतन व संवाद ही वह तरीका है जिसके जरिए भाषा सीखी जाती है ओर विचारों को धार दी जाती है। इन पाठ्यपुस्तकों में ऐसी किसी चर्चा के लिए बमुश्किल ही कोई जगह है। हम नीचे दिए उदाहरण से इसे समझ सकते हैंः

एक मां अपने बच्चे को लिखती है...

People like us (note the irony of marginalisation) are really fortunate that such type of education with hostel facility is provided to the marginalised section of society by the government free of cost. This is really a dream come true opportunity for people like us (note the repetition). The good quality of food and clothes ensured by them is also a great relief… Impressed by this scheme I am going to popularize this concept among all parents of girls in and around our village. (सच में हमारे जैसे लोग (वंचना की विडंबना पर ध्यान दें) भाग्यशाली हैं कि सरकार द्वारा समाज के वंचित तबके के लिए इस तरह की शिक्षा आवासीय सुविधा के साथ मुफ्त में उपलब्ध करवाई जाती है। यह हमारे जैसे लोगों (इस दोहराव पर ध्यान दें) के लिए तो सपना सच होने जैसा है। उनके द्वारा अच्छी गुणवत्ता का भोजना व कपड़े उपलब्ध करवाना एक राहत की बात है... इस योजना से मैं इतनी प्रभावित हुई हूं कि अपने गांव व आस-पास की लड़कियों के माता-पिता के बीच इसे प्रचारित करने वाली हूं।) (Life At KGBV Class VIII, pages 27-28.)

वास्तविक जीवन की दृष्टि से किसी मां का ऐसी बात कहना और ऐसी किताबी भाषा का प्रयोग अति नाटकीय लगता है जो साफ़ तौर पर सरकारी योजनाओं का प्रचार ही नज़र आता है। एक पाठ्यपुस्तक का उपयोग सरकारी योजनाओं के प्रचार के लिए करना कहां तक जायज़ है। इसके अलावा, ये अंश सुविधा और सुविधा विहीन लोगों की दो पृथक दुनिया होने की धारणा को भी पुष्ट करता है और उन्हें हम और वे की श्रेणियों में विभाजित होता हुआ दिखाता है। दरअसल यह वंचना से दबी-कुचली प्रजा द्वारा राज्य रूपी सत्ता पर अपने अस्तित्व को बचाए रखने की निर्भरता का विद्रूप चित्रण प्रस्तुत करता है। यह विवरण राज्य की कल्याणकारी और जवाबदेह भूमिका को दरकिनार करते हुए उसे एक ऐसे कृपालु दाता के रूप में प्रस्तुत करता है जिसकी सत्तापरक इच्छा और अनिच्छा पर वंचित तबकों का भाग्य तय होता है। और मुफ्त शिक्षा की सुविधा उसे अपने भाग्यशाली होने का सुख देती है। इसे पढ़ना व्यापक दुनिया का सामना करने पर उस छठी कक्षा की लड़की को कितना आत्मविश्वास देगा? या उसके कंधे हमेशा ही 'हम लोगों' की शब्दावली का भार ढोते हुए राज्य सत्ता के रूप में शक्तिशाली वर्ग के रहम पर अपनी अस्मिता को बनाए रखने की मुश्किलों के विचार से डर और असुरक्षा का भाव पाले रखने को बाध्य होंगे।

सीखने-सिखाने को लेकर मान्यताएं

बच्चे सचेतन रूप से ज्ञान का निर्माण खुद करते हैं। उन्हें अनुभवों व चर्चा के जरिए अवधारणों के बारे में खुद अपने निर्णय लेने की जरूरत होती है (NCF 2005, P. 13)। 'बाल केन्द्रित शिक्षा का अर्थ है कि बच्चों के अनुभवों, उनकी राय व सक्रिय भागीदारी को प्राथमिकता दी जाए। परम्परागत शिक्षण पद्धतियों का जोर बच्चों के समाजीकरण व ग्रहण करने संबंधी गुण पर रहता है। इसकी बजाए हमें उनकी सक्रियता व रचनात्मकता को विकसित करने की जरूरत होती है। अच्छे बच्चे की अवधारणा का जोर उन्हें शिक्षक का आज्ञापालक बनाने पर होता है, इसमें नैतिक चरित्र तथा ज्ञान की सत्ता के तौर पर शिक्षक की कही बातों को मानने पर बल होता है (NCF 2005, P. 13)।'

कक्षा तीन की किताबों में 15 पाठ हैं इनमें से 7 पाठ बच्चे को एक ऐसे प्राणी के तौर पर देखते हैं जो गलत काम करता रहता है, उसे सही व्यवहारों के हथौड़े से गढ़ते हुए नैतिकता व शिष्टाचार सिखाना है। नीचे कक्षा तीन की

किताब के पाठों से कुछ ऐसे उदारहण दिए जा रहे हैं जिनमें ऐसा किया जा रहा हैः

- Work while you work - teaching the child time management (बच्चों को समय प्रबंधन सिखाना)
- A Smile with a Blessing - helping others (दूसरों की मदद की सीख)
- Good Habits (अच्छी आदतों की सीख)
- Swach Bharat Abhiyan - cleanliness (स्वच्छता के बारे में)
- Traffic Lights - Road sense (सड़क पर चलने के नियमों के बारे में)
- Life Echoes - love and hatred (प्यार और नफरत के बारे में)
- Ant and the Hunter - gratitude (कृतज्ञता/आभार के बारे में)

कक्षा तीन की किताब में दिए अभ्यासों का जोर यह लिखवाने पर है कि कौनसा व्यवहार सही है और कौनसा गलत। पृष्ठ संख्या 32 व 33 इसके नमूने हैं। इन पर दिए निर्देश कहते है, 'चित्र देखकर सवाल पढ़ो और जवाब दो।'

- Don't play in the rain. No, I won't. (बारिश में मत खेलो। ठीक है, मैं नहीं खेलूंगा।)
- Don't tease animals. No, I won't. (जानवरों को तंग मत करो। ठीक है, मैं नहीं करूंगा।)
- Don't pluck flowers. No, I won't. (फूलों को मत तोड़ो। ठीक है, मैं नहीं तोड़ूंगा।)

क्या हम 'क्या करना ठीक है' यह बता देने मात्र से यह विचार करना सीख जाते हैं कि क्यों हमें यह करना चाहिए या क्यों वह करना चाहिए? उपदेश देने से और सही गलत बता देने से केवल व्यवहार के स्तर पर बदलाव आता है, क्या इससे हमारी सोच में भी बदलाव आता है? दूसरी बात कि क्या कक्षा तीन में अंग्रेजी सिखाने का उद्देश्य अच्छी आदतों का विकास करना है? स्वतंत्र अभिव्यक्ति, अपने मत (अस्वीकृत मत को भी) को जाहिर करने का अधिकार, चर्चा करना, विचार व तर्क करना जैसी चीजें एक विकसित होते बच्चे के लिए महत्वपूर्ण होती हैं (NCF 2005, P.13)।

भाषा सीखना कौशल विकसित करना है

प्राक्कथन व गतिविधियों में कहा गया है कि भाषा सीखना, सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना व व्याकरण सीखना जैसे कुछ कौशलों को विकसित करने का मामला है। इसे सिखाने के लिए चित्रों व शब्दों के जरिए घोटा लगवाने व बारंबार अभ्यास करवाने की पद्धति का इस्तेमाल किया गया है। सीखने के लिए बच्चे को शिक्षक के पीछे दोहराने की जरूरत होती है, इसीलिए कक्षा 4 के बाद हर पाठ की गतिविधि 2 में बच्चे को शिक्षक के पीछे शब्द दोहराने का काम दिया गया है। जबकि थीम आधारित गतिविधियां बेहद कम हैं? NCF 2005 द्वारा सुझाई गई एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया करने का मौका देने वाली, खेल व समूह में काम के मौके देने वाली गतिविधियां पाठ्यपुस्तकों में बहुत कम हैं (NCF 2005, P. 13)?

अंश से समग्र तक

यह किताबें यह भी मानती हैं कि बच्चा भाषा छोटे-छोटे अंशों से सीखना शुरू करता है और बाद में विस्तृत रूप में सीखता है। इसीलिए कक्षा एक की किताब के पाठों में वर्णमाला लिखना सीखने पर जोर दिया गया है व लिखना सीखने पर 45 पृष्ठ लगाए गए हैं यानी हर वर्ण के लिए एक पृष्ठ। छोटे, बड़े वर्ण व पैटर्न बनाने पर दिए काम को शामिल कर लें तो बच्चों को कक्षा एक की किताब में कुल 155 शब्दों का दोहरान करना है तथा इन शब्दों के बीच किसी तरह का कोई आपसी संबंध नहीं है सिवा इसके कि वे ए, बी, सी आदि वर्णों से शुरू होने वाले शब्द हैं। कक्षा एक की किताब में 15 कविताएं हैं किन्तु बच्चों में ध्वनि सजगता लाने के लिए कौन-कौनसी गतिविधियां करवाई जानी हैं इस संबंध में शिक्षक के लिए किसी प्रकार के निर्देश नहीं दिए गए हैं। बच्चे को वर्णमाला के इन 45 पृष्ठों को लिखने में मेहनत लगानी है और 155 शब्दों को रट्टा मार-मारकर याद करना है। इन शब्दों के साथ 50 चित्र भी दिए गए हैं! 'इनपुट रिच' वातावरण का अर्थ होता है कि बच्चे शब्दों को सार्थक तरीकों से सीखें (NCF 2005, P. 39)। यह सच में बोधगम्य इनपुट की बहुत ही अजीब व्याख्या है कि 15 कविताएं बिना कोई ऐसा निर्देश दिए डाल दी जाएं कि उनके साथ शिक्षक को क्या करना है।

कक्षा दो की शुरुआत पूरे टैक्स्ट के साथ होती है। यानी हम सूक्ष्म (वर्णमाला) से विस्तृत की ओर बढ़ रहे हैं। किन्तु यह NCF 2005 का उल्लंघन है जहां कहा गया है कि बच्चों को ऐसे 'इनपुट रिच' वातावरण की जरूरत होती है जिसमें संवाद का वातावरण हो और दिया जाने वाला 'इनपुट' समझ में आने वाला हो (NCF 2005, P. 39; Position Paper for English, P. 9)। कक्षा दो का कुछ भाग भी वर्णमाला रटने पर लगाया गया है और यह मान लिया गया है कि अब बच्चे शब्द व वाक्य लिख सकते हैं। इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है कि लेखन की शुरुआत करने से पहले बच्चे के पूर्वज्ञान व उसकी अपनी दुनिया को मौखिक भाषा के जरिए कक्षा का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। इस पर भी ध्यान नहीं दिया गया है कि बच्चे का पूर्वज्ञान, उसकी रुचियां तथा समाज की वे सांस्कृतिक रस्सियां जिनके सहारे बच्चा पढ़ने-लिखने में शिक्षित होने के लिए अपने शुरुआती नन्हें-नन्हें कदम उठाता है उन्हें कक्षा प्रक्रियाओं का हिस्सा बनाए जाने की जरूरत होती है। यहां यह बात समझने की है कि पाठ्यपुस्तकों को बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ से जोड़ने की कवायद पाठ्यपुस्तक में राजस्थान के पर्यटन स्थलों पर पाठ रख देने की औपचारिकता निभा कर कर दी गई है जो NCF में इस विषयक की गई अनुशंसा की पूर्ति नहीं करती।

Class II : Our Lovely Rajasthan, Sariska: The Tiger Reserve
Class III : Charbhujanath Mandir
Class IV : Mangarh Dham
Class V : Chittorgarh

जैसा कि प्राक्कथन में वादा किया गया है कि इन थीमों में स्थानीय व वैश्विक मुद्दों को शामिल किया गया है। स्थानीयता के आस्वाद के लिए हमने राजस्थान की सबसे बेहतर चीजें डाली हैं किन्तु वैश्विक आस्वाद के लिए हम या तो काल्पनिक द्वीप रचते हैं या प्राचीन भारत की शरण लेते हैं। क्या वैश्विकता को केवल 'डिजिटलाइजेशन' व काल्पनिकता के सहारे ही प्रस्तुत किया जा सकता है?

पाठों का अनुपयुक्त कठिनाई स्तर

कक्षा एक के बाद कक्षा दो में शरुआत फिर लिखने से होती है और 6 पृष्ठ अक्षर पहचान तथा वर्ण व शब्द लिखने पर लगाए गए हैं। और उसके बाद हम स्वामी विवेकानन्द के पाठ पर छलांग लगा देते हैं जिसमें 7 वाक्यों में parliament, religions, represented, platform, culture व audience जैसे 6 मुश्किल व जटिल शब्द शामिल हैं। NCF 2005 द्वारा प्रामाणिक टैक्स्ट लिए जाने संबंधी दिए गए सुझाव की इस व्याख्या पर सिर्फ हैरानी ही जताई जा सकती है (NCF 2005, P. 39)! पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के अनुसार, इस अवस्था के बच्चों के लिए अमूर्त अवधारणा समझ पाना मुश्किल होता है।

वर्णमाला पद्धति

कक्षा तीन से कक्षा आठ तक ध्वनियों पर करवाया गया काम प्रचुर मात्रा में है। NCF 2005 कहता है कि शुरुआती सालों में बच्चों के आस-पास मौखित व लिखित भाषा का वातावरण का होना जरूरी होता है। संवाद संबंधी कामों तथा अंतःक्रिया आधारित रेडियो को ध्वनि सजगता विकसित करने व भाषा अर्जन की प्रक्रिया शुरू करने के साधन के तौर पर सुझाया गया है (Position Paper for English, P. 7; NCF 2005, P.39 Input rich communicational environments)। शुरुआती सालों में सिर झुकाए वर्णमाला लिखने की वजह से आत्मविश्वास में हुई कमी को बाद के सालों में ध्वनियों का कितना भी रट्टा लगाकर भरा नहीं जा सकता!

बच्चे की आवाज कहां है?

सुनने व बोलने जैसी कुशलताओं को रट्टा मार-मारकर सिखाया जाता है। छात्रों को शिक्षकों के पीछे-पीछे दोहराना है अथवा पढ़े गए वाक्यों को व्यक्तिगत रूप से पढ़ना है। कक्षा चार से दिए गए निम्न उदाहरणों का जायजा लेंः

Lesson 1 Page 5 Activity III Recite a poem, Activity IV Fill in the blanks.
Lesson 2 Activity IV Pronounce the following words

Lesson 3 page 27 Activity IV Pronounce the following, listen to the rhyme and answer questions
Lesson 4 page 35 Activity 4 page 35, Speak out (repeat) words for
Lesson 5 Activity 4 Speak out after your teacher
Lesson 6 Activity 4 Read a poem and answer questions, speak out (repeat) rhyming words.
Lesson 7 Activity 4 Ask each student to speak (repeat by filling in the blanks) two sentences.
Lesson 8 The teacher will read out a paragraph and children will listen and answer questions

किसी भी भाषा को सीखने की प्रक्रिया में यह जरूरी होता है कि दिए जाने वाला 'इनपुट' बोधगम्य या समझ में आने वाला हो साथ-साथ 'आउटपुट' के मौके हों और वातावरण ऐसा हो जिसमें बच्चा सहज महसूस करे। जब बच्चे अपने साथियों के साथ व करवाई जाने वाली खास सामूहिक गतिविधियों में एक-दूसरे से बातचीत करते हैं तब इससे भयरहित वातावरण का निर्माण होता है जो भाषा अर्जन में मददगार होता है। सुनने व बोलने की कुशलताएं विकसित करने के लिए उक्त गतिविधियों का पूरा जोर दोहराने व अभ्यास पर है।

हर कक्षा में टैक्स्ट (पाठ) के बाद समझ को जांचने वाले सवाल (comprehension questions) दिए गए हैं। इनमें गतिविधि एक शामिल है। सभी कक्षाओं में इस गतिविधि एक के अंतर्गत दिए गए सभी सवाल तथ्यों की जांच करने वाले हैं तथा उनमें 'सही' जवाब का इशारा छुपा होता है। इन पाठ्यपुस्तकों में ज्यादातर सवाल केवल एक जवाब वाले हैं, एक से ज्यादा जवाबों वाले सवाल लगभग नहीं हैं। Position Paper, National Focus Group on Teaching of English व NCF 2005 स्पष्ट रूप से यह सुझाव देते हैं कि बच्चों को उनके विचार व्यक्त करने, उनकी रुचियों को जाहिर करने, उनकी पसंद-नापसंद को जाहिर करने व अपनी राय देने के मौके प्रचुर मात्रा में दिए जाने चाहिए (NCF 2005, P. 13)।

NCF 2005 कहता है, पारंपरिक पुस्तकों में बच्चा तभी बोलता है जब वह या तो शिक्षक के किसी सवाल का जवाब दे रहा है या शिक्षक की कही बात को दोहरा रहा है। उसके पास खुद कुछ करने के अवसर व पहल करने के मौके लगभग ना के बराबर होते हैं। इस नज़रिए को बदले जाने की जरूरत है (NCF 2005, P. 13)।

हम गतिविधि एक से लिए कुछ उदाहरणों पर नज़र डालते हैं:

1. Class III Page 13 What was the old woman carrying, Who helped the old lady stand? Where did Meera throw the banana peel? What did the old lady give to Meera?
2. Class IV page 13 What did Ram make for his project? Who took Prakash to hospital and why? Who helped Ram in joining the school? Why could not Prakash play the match? How did Prakash realise Ram's pain?
3. Class V page 13 Why does the poet say we are not afraid? Which line in the song tells you that the poet is not living peacefully in the present? How do you feel when you sing this song?
4. Class VI page 13 At last… This line is said by… Who gave advice to the son?
5. Class VII page 13 Which trees were being cut down by the royal people and why? Who was the supervisor of the team? Who lost their lives and why? How did Amritadevi protest? What did Maharaja Abhay Singh do when he came to know about the massacre?
6. Class VIII page 10 Where did the animals usually assemble? What did the animals do in their fun time? When did the animals show their anger? Who was Nivedita? How did the animals feel happy? Why did the cages look empty?

पाठों में दिए गए अधिकांश प्रश्न भी ऐसे हैं जो बच्चों को स्वयं विचार करने और उन विचारों की अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान नहीं करते क्योंकि वे तथ्यपरक हैं जिनके उत्तर पाठ्य सामग्री में ही मौजूद हैं।

रूढ़ छवियां या 'स्टीरियोटाइप्स'

पाठ्यपुस्तकें एक खास नजरिए वाली रूढ़ छवियों या 'स्टीरियोटाइप्स' को ही और अधिक स्थापित करती हैंः

1. कक्षा 4 की पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ 64 पर दी गई गतिविधि 4 में दिए गए इस अभ्यास पर एक नजर डालें

I was doing my homework. My mother ____ (cook) food. My sister ____ (play). My father _____ watch TV. My grandmother ____ (sing) hymns. Our servant ____ arranging things in the drawers.

2. पाठ्यपुस्तकों की कहानियां कहती हैं कि आदिवासी व गांव के लोग आत्म-बलिदान करने वाले होते हैं। पुस्तकों में आदिवासियों व वंचितों पर तीन पाठ हैं और तीनों ही पाठों में आदियावासियों व उनके बच्चों से बलिदान करवाया गया है, उन्हें धनी व सत्तावान लोगों के लिए अपनी जान जोखिम में डालते बताया गया है। उदारहण के लिएः

Class VIII: The Brave Lady of Rajasthan (who sacrifices her child and herself)

Class VII: The Unique Sacrifice (tribal women had their limbs cut off - a massacre of 363 people from that village by the King)

Class VI: Panna Dhai (who prefers to kill her own child to save the king's son)

भाषा और विचार साथ-साथ चलने वाली प्रक्रियाएं हैं। सूचना आधारित सवालों वाले रूखे-सूखे और एक पक्षीय आख्यान (पाठ) उन्हें विचारहीन अभ्यासो में तब्दील कर देते हैं और उनसे भाषाई व संज्ञानात्मक, दोनों में से किसी तरह का लक्ष्य पूरा नहीं होता है। भारत जैसे विविधता पूर्ण लोकतांत्रित देश में निर्देशात्मक पाठ्यपुस्तकें लिखने का कोई मतलब नहीं है। शहरों में राज्य-बोर्डों से संबद्ध स्कूल हैसित के हिसाब से काफी नीचले पायदान पर होते हैं फिर भी छात्रों के बीच संस्कृति, भाषा व सामाजिक मान्यताओं के हिसाब से काफी विविधता होती है। पाठ्यपुस्तकों में उनके मूल्य, संस्कृति व समाज को प्रतिनिधित्व मिलना ही चाहिए। जब पाठ्यपुस्तकों की भाषा बच्चों के वातावरण से बहुत परायापन बरतती है तो वह उन्हें ऐसी संस्कृति में धकेल देती है जो उनको व उनके पूर्व ज्ञान को शामिल नहीं कर रही होती है। ऐसे में वे बिना मस्तूल या पतवार के एक अशांत समुद्र में गोता लगा रहे होते हैं। यह बात ना तो दुनिया को लेकर उनकी सक्रिय समझ में कोई विश्वास पैदा कर रही होती है ना ही उनकी संस्कृति में। यह केवल और केवल उन्हें स्कूल से विमुख करने का काम कर रही होती।

केवल अभ्यास पर टिके और निरर्थक वर्णों से शुरुआत करने वाले पाठ्यक्रय चाहे कितनी भी अच्छी मंशा से बनाए गए हो वे बच्चों को स्कूल में टिकाए रखने में असफल ही हुए हैं। इस संदर्भ में केवल वे ही बच्चे अपवाद होते हैं जिनके पास पहले से भाषा की एक सांस्कृतिक निधि मौजूद होती है और जो मानक भाषा व उसके मानदंडों से परिचित होते हैं। यह कितनी ही बार सिद्ध हो चुका है कि मूल्यों को कथा या आख्यान दोहरा-दोहरा कर नहीं सीखा जा सकता बल्कि इसके लिए सोच में बदलाव लाना होता है और इसे चर्चा करने, सवाल उठाने व आलोचनात्मक चिंतन करने के मौके बनाकर ही किया जा सकता है! हम बराबरी के मौकों की उम्मीद कैसे कर सकते हैं अगर पाठ्यपुस्तकें उस बच्चे की ही अवहेलना कर रही हों जिसके लिए उन्हें लिखा गया है! ◆

(इस लेख को अंतिम रूप देने में गुरुबचन सिंह व पल्लवी चतुर्वेदी द्वारा दिए गए सुझाव महत्वपूर्ण रहे हैं।)

भाषान्तर : प्रमोद

संदर्भ

NCF 2005 : http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/english/nf2005.pdf

- Position Paper National Focus Group on Teaching of Indian Languages. New Delhi: NCERT, 2006.
- Position Paper National Focus Group Teaching of English. New Delhi: NCERT, 2005.
- Samajh ka Madyam. New Delhi: NCERT, 2009. Hindi.

लेखिका परिचयः अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ कंटीन्यूइंग एज्यूकेशन एण्ड यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर में सहायक प्रोफेसर तथा अकादमिक व शिक्षणशास्त्र की विशेषज्ञ हैं। वे अंग्रेजी के शिक्षक प्रशिक्षकों की एक टीम का नेतृत्व भी करती हैं। इससे पहले वे भारत व नेपाल में केन्द्रीय विद्यालय में अंग्रेजी शिक्षण कर चुकी हैं।

पुरानी बीमारियों से ग्रसित पाठ्यपुस्तकें

लतिका गुप्ता

भारतीय स्कूलों में अंग्रेजी की पढ़ाई का विश्लेषण सिर्फ एक अकादमिक विषय के रूप में नहीं हो सकता। उसके लिए कई और कारकों की समझ बनानी जरूरी है। उनमें से कुछ मुख्य हैंः लोगों की आकांक्षाएं, मातृभाषा एवं स्थानीय भाषा के पढ़ाए जाने का तरीका एवं विषय वस्तु को देखने का अकादमिक नजरिया जिस पर संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। भाषा चाहे कोई भी हो और दुनिया के किसी भी भाग में पढ़ाई जा रही हो, उसके शिक्षण को सांस्कृतिक-सामाजिक संदर्भ में अवस्थित देखा जाना चाहिए। अंग्रेजी के शिक्षण पर केंद्रित राष्ट्रीय फोकस समूह के पर्चे के अनुसार, ''भाषा की पाठ्यचर्या के लक्ष्य द्विआयामी होते हैं, बुनियादी दक्षताओं को सीखना, जैसे कि मातृभाषा सीखते समय स्वाभाविक रूप से होता है, और अमूर्त चिंतन एवं ज्ञान अर्जन के लिए भाषा का एक निमित्त के रूप में विकास। इसके लिए जरूरी है कि समूची पाठ्यचर्या में भाषा उपागम के तहत अंग्रेजी, अन्य भाषाओं एवं विषयों के बीच की मेढ़ों को तोड़ा जाए (एनसीईआरटी, 2006, ख, पृ 5)। भाषा का शिक्षण जीवन की संपूर्णता लिए हुए हो न कि खण्डों में टूटन से भरा शिक्षण और सीखने का अनुभव देता हो। इस उदार एवं समग्र पद्धति की मांग होती है कि पाठ्यपुस्तकों की रचना इस दृष्टिकोण के साथ की जाए कि विषयवस्तु में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का सांस्कृतिक सामाजिक परिवेश झलकता हो और अंग्रेजी उस संदर्भ में विचार एवं संवाद की भाषा की तरह उभरे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (एनसीईआरटी, 2006, क) के अनुसार, अंग्रेजी की पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु ऐसी होनी चाहिए कि रोजमर्रा में आने वाली नई सामग्री उसमें शामिल हो और ऐसा न हो कि एक ही पाठ को रट-रट कर उसमें महारत हासिल की जा रही हो। शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही परिचित एवं अपरिचित पठनीय सामग्री निरंतर कक्षा में लाते रहें, जिससे कि अंग्रेजी सीखने का अनुभव असल जीवन से जुड़ा और सुखद महसूस होता रहे। विद्यार्थी प्रश्नों के उत्तरों और व्याकरण के नियमों पर आधारित जुमलों को रटने के बोझ तले दबे न रहें। राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (एसआइईआरटी) ने वर्ष 2016 में नई पाठ्यपुस्तकों की रचना की है। प्रस्तुत लेख में इस शृंखला में आई अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

पहली से पांचवीं कक्षाओं की अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकों में शिक्षकों के लिए एक पत्र हिंदी में दिया गया है। यह पत्र शिक्षकों से अंग्रेजी शिक्षण के मुद्दे पर एक संवाद स्थापित करने की कोशिश करता है। इस पत्र की भाषा हिंदी होना अपने-आप में एक रोचक विषय और विश्लेषण लायक मुद्दा है। मजेदार बात यह है कि इस पत्र से पहले राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान के निदेशक द्वारा संप्रेषित आमुख दिया गया है जो कि अंग्रेजी में है और हरेक पुस्तक में हूबहू मौजूद है। प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों से निदेशक का आमुख अंग्रेजी में पढ़ने की उम्मीद रखी गई है, लेकिन अंग्रेजी के शिक्षण को लेकर लिखा गया पत्र - जो कि जाहिर है कि अंग्रेजी के शिक्षकों के लिए है - हिंदी में बेहतर समझे जाने की कल्पना दर्शाता है। इससे लेखकों के मन में आया संदेह जाहिर होता है कि प्राथमिक स्तर पर अंग्रेजी पढ़ाने वाले इस भाषा

का इस्तेमाल विचारों के आदान-प्रदान के लिए शायद न करते हों। कक्षा छठी से आठवीं तक की पुस्तकों में शिक्षकों के नाम पत्र अंग्रेजी में दिए गए हैं। प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के शिक्षकों की विचार समझने की क्षमता को भाषा केंद्रित मानते हुए उनमें अंतर करना शिक्षा व्यवस्था की स्थापित ऊंच-नीच को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जो शिक्षक अंग्रेजी पढ़ाने की जिम्मेदारी के लायक है वही शिक्षक शिक्षण संबंधी मुद्दों को अंग्रेजी में समझ नहीं सकता- यह सोच, अटपटी, बेमानी एवं अपमानजनक है।

पहली कक्षा की अंग्रेजी पाठ्यपुस्तक

किसी भी भाषा में पढ़ना-लिखना सीखने की एक विद्यार्थी की शैक्षिक यात्रा कैसी होगी, इसका अंदाजा पहली कक्षा की पाठ्यपुस्तक से काफी हद तक लगाया जा सकता है। इसलिए प्रस्तुत लेख में पहली कक्षा की अंग्रेजी पाठ्यपुस्तक का विश्लेषण विशेष गहराई के साथ किया गया है। पहली कक्षा की पाठ्यपुस्तक में दस इकाइयां हैं जिनमें मुख्यतः कविताएं, चित्रों की नकल और लकीरें खींचने की गतिविधियां, अक्षर अभ्यास और चित्र मिलान की गतिविधियां दी गई हैं। पहले पाठ में छोटी-छोटी छः कविताएं दी गई हैं। एक दो को छोड़ दें तो अन्य सभी पाठों में शुरुआत में एक कविता दी गई है और साथ में उपरोक्त गतिविधियां। कुल मिला कर 18 कविताएं पहली कक्षा की पुस्तक में हैं, लेकिन एक भी कविता में राजस्थानी परिवेश की झलक नाममात्र को भी नहीं है। दो को छोड़कर सभी कविताएं नीरस, उबाऊ हैं और सतही स्तर पर उपदेश देने एवं बच्चों को कुछ न कुछ सिखा देने की पुरानी बीमारी से ग्रस्त हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न चीजों के लिए भगवान का धन्यवाद करना, भगवान का आर्शीवाद पाना, अंग्रेजी के अक्षर सीखना, समय पर स्कूल आना और प्रार्थना में जाना, शरीर के अंग, गणित की संख्या एवं सप्ताह के दिन। कविताओं की वाक्य-रचना एवं शब्दावली कृत्रिम है। कविताओं की भाषा में एक 6 साल के बच्चे के लिए जरूरी सहजता नहीं है। कविताओं को महत्वपूर्ण मानने के बावजूद पुस्तक के रचयिताओं ने बाल सुलभ एवं उपयुक्त कविताएं नहीं चुनी हैं। ऐसी कविताएं भाषा सीखने के लिए उपयोगी नहीं हो सकतीं क्योंकि अगर बच्चे इनको सहज भाव से मजा लेते हुए गा नहीं पाएंगे तो वे शब्द और वाक्य रचना भी नहीं सीख पाएंगे। कुछ कविताएं तो सही मायनों में बेतुकी हैं जिनमें गेयता है ही नहीं। हालांकि शिक्षकों को लिखे पत्र में कविताएं गाने पर जोर दिया गया है।

पहले पाठ के पहले पृष्ठ से ही पाठक सांदर्भिक शून्य महसूस करता है चाहे वह छोटा बच्चा हो या वयस्क। पुस्तक में शुरुआत से अंत तक राजस्थान के परिवेश पर आधारित कविता या चित्र नहीं दिए गए हैं। ऊंट पुस्तक के अंत में एक गतिविधि में दिखाई देता है जिसमें अंग्रेजी में प्रयुक्त किए जाने वाले 'आर्टिकल्स' यानि 'अ', ऐन, व 'द' में से पहले दो पर प्रश्न दिए गए हैं। राजस्थान की रेत, किले, पशु, खानपान न केवल कविताओं और गतिविधियों से बल्कि पुस्तक से ही नदारद हैं। जो दो कविताएं ठीक-ठाक कही जा सकती हैं वे जिराफ और हाथी के बारे में हैं। अक्सर इस स्तर पर पाठ्यपुस्तक समितियों के सामने चुनौती होती है कि 6 वर्ष के विद्यार्थी के लिए परिचित एवं अपरिचित जानकारी के बीच सामंजस्य कैसे बिठाएं। राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा नियुक्त पहली कक्षा की अंग्रेजी पुस्तक की समिति ने न केवल इस चुनौती की उपेक्षा की बल्कि एक बेगाना भाषाई संसार बच्चे के सामने रचा है। इस पुस्तक से सबसे पहले जो महसूस होता है वह है कि अंग्रेजी अपनी जिंदगी के बारे में सोचने की भाषा नहीं है वरन् एक अलग दुनिया को जानने की भाषा है।

इस बेगानेपन को पुस्तक की विषयवस्तु एवं दिए गए चित्रों में बहुत ही गहन रूप से देखा जा सकता है। दरअसल, पुस्तक के लिए मौलिक चित्र तो बनवाए ही नहीं गए हैं। पूरी पुस्तक इंटरनेट से चुराए चित्रों से भरी पड़ी है। मौलिक चित्रकारी के नाम पर सिर्फ पृष्ठों के किनारे पर दी गई पट्टी है। उस पट्टी पर दिए गए चित्र भी निम्न कोटि के ही हैं जो कार्टून शैली में बनाए गए हैं और बिना किसी सार के इधर-उधर भर दिए गए हैं। चित्रों की भाषा-शिक्षण में संजीदा भूमिका होती है लेकिन अंग्रेजी की किसी भी पुस्तक में इस मुद्दे पर ध्यान नहीं दिया गया है। चित्रों पर पर इस दृष्टि से शायद विचार हुआ ही नहीं कि अंग्रेजी की पुस्तक में अपनापन जगाने के लिए उनकी अहम् भूमिका हो सकती है। चित्रों की शैक्षणिक प्रासंगिकता की कसौटी पर निर्बल समझ इस पुस्तक से जाहिर होती है। इकाइयों में दी गई सभी गतिविधियों में बच्चों से दिए गए चित्रों की नकल करने या उनमें रंग भरने के लिए कहा गया है। किसी

भी भाषा में संवाद और अभिव्यक्ति की इच्छा के विकास में चित्रों की भूमिका अग्रणी है। रूढ़ चित्र बनाकर या बने बनाए में रंग भरकर बच्चे अभिव्यक्ति के कौशल की तरफ कदम नहीं उठा सकते। उसके लिए जरूरी है कि बच्चों को लगातार यह चुनने की आजादी मिले कि उन्हें क्या बनाना है। ''चित्रकारी बच्चों के समग्र विकास में, और विशेषकर भाषा के प्रयोग और लेखन में योगदान देती है, बशर्ते कि बच्चे को चित्र-माध्यम में पैठने को पूरी तरह आजाद छोड़ दिया जाए'' (कुमार, 1996, पृ 52)। मुक्त भाव से चित्र बनाना छोटे बच्चे की मौलिक अभिव्यक्ति का पहला निमित्त होता है और इसलिए भाषा शिक्षण की किसी भी पाठ्य सामग्री में उसका स्थान अपरिहार्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान की पहली कक्षा की अंग्रेजी पुस्तक की समिति के पास इस सैद्धांतिक समझ का अभाव है। साथ ही इस समिति की समझ में लेखन एक सोच समझकर किया जाने वाला काम न होकर अक्षर बनाने में दक्षता तक सीमित प्रतीत होता है। पुस्तक की प्रत्येक इकाई में बारम्बार लकीरें, गोले बनाने व अक्षर लिखने के अभ्यास हैं। लिखने की पढाई के मूलभूत सिद्वांतों की कसौटी पर तौलें तो पहली कक्षा की पुस्तक काफी कमजोर प्रतीत होती है। यह पुस्तक शिक्षक को लिखने की पढ़ाई की नवाचारी पद्धति के लिए प्रेरित करने में असमर्थ है।

पहली कक्षा की पाठ्यपुस्तक में अक्षर के मौखिक एवं लिखित अभ्यास की गतिविधियों की भरमार है, लेकिन कहानी एक भी नहीं है। छह वर्ष के बच्चों की पुस्तक से कहानी की अनुपस्थिति भाषाई शिक्षण के उसी रूढ़िबद्ध विचार को ठोस रूप देती है जिसके तहत माना जाता है कि जब तक अक्षर ज्ञान पूरा नहीं हो जाता, बच्चे पाठक नहीं बन सकते। हिन्दी, अन्य भारतीय भाषाओं एवं अंग्रेजी शिक्षण की दुर्दशा शायद इसी विचार के कारण सबसे ज्यादा हुई है। ऐसी पुस्तकों के कारण पढ़ना सीखने की तैयारी एक छोटे बच्चे के लिए इतनी निस्तेज साबित होती है कि वह पाठक बनने की यात्रा से शुरू में ही बाहर हो जाता है। अक्षर और शब्द दोहरान से लबालब पुस्तक राजस्थान के बच्चों को अंग्रेजी से जुड़ने न देने में काफी कारगर साबित होगी। पुस्तक के अंत में दी गई 155 शब्दों की सूची इस पुस्तक के बेगानेपन को सटीक रूप से प्रतिबिंबित करती है। उसमें से कुछ शब्द हैः quill, igloo, violin and yacht। राजस्थान में रहने वाले पांच साल के विद्यार्थी अंग्रेजी सीखने की शुरुआत अपने प्रतिवेश के बारे में बातचीत करके नहीं बल्कि एस्किमो की झोपड़ी का नाम रटते हुए करेंगे। यह पुस्तक अंग्रेजी को बच्चे के जीवन से फासले पर रखती है और उसे एक अन्य भाषा की तरह प्रस्तुत न करके यांत्रिक एवं निरर्थक कार्यों के संकलन के रूप में परोसती है। निरर्थक कार्यों से आशय है कि अंग्रेजी के अक्षरों को दर्जनों बार दोहराते रहने और न्यारी वस्तुओं के चित्र देखकर उनके नाम जोर-जोर से बोलते और लिखते रहने की कवायद। यहीं से वह मूलभूत समस्या शुरू हो जाती है जो बच्चे की प्रकृति से इन अभ्यासों का मेल न होने के कारण बनती है। मनोविज्ञान ने हमें सिखाया है कि बच्चे ऐसे काम करने में सक्षम होते हैं जिनका फल वे फौरन पा सकें। दूरगामी लाभ की उम्मीद छोटे बच्चों के लिए संज्ञानत्मक रूप से ग्राह्य नहीं होती इसलिए कुछेक को छोड़ कर अधिकतर को ऐसी गतिविधियां सीखने की एक ठोस एवं अटल वजह नहीं दे पातीं। निरर्थकता इस मायने में सबसे ज्यादा होती है कि अक्षर का कोई अर्थ नहीं होता। वह सिर्फ एक आकार है जिससे एक ध्वनि जुड़ी होती है। आकार, ध्वनि मिलान करते-करते बच्चे थक जाते हैं, कई बार तो याद रखने के बोझ से चुक जाते हैं। अंग्रेजी में याद रखी जाने के लिए 26 अक्षरों के बड़े आकार और उतने ही छोटे आकार। ग्रामीण परिवेश से आए बच्चे के लिए यह याद रखी जाने वाली सामग्री का पहाड़ बना देते हैं। एक 5-6 साल के बच्चे को 52 आकार और उनकी ध्वनियां याद करनी होती हैं और जो सरल से सरल शब्दों में भी हूबहू नहीं आतीं। अंग्रेजी की पुस्तक लिखने वालों की एक बात समान है चाहे वे भारत में कहीं भी हों कि वे पहला शब्द apple को चुनते हैं जिसमें a की ध्वनि ऐ की हो जाती है। इस बीमारी से राजस्थान की पुस्तक समिति भी ग्रस्त रही और इतनी ज्यादा कि गुरूजनों के पत्र में अंग्रेजी पढ़ाने की समस्याओं को apple से ही समझाया है। अंग्रेजी में शब्द बोलने के ढंग में अक्षर का उच्चारण हूबहू नहीं होता है। इसके बावजूद पुस्तक समिति ने 127 पृष्ठों में से 85, यानि 67 प्रतिशत जगह अक्षर बोलने या लिखने के काम को दी है। अक्षर को दी गई यह तवज्जो और इस तरह से कि कहानी को पुस्तक में बिल्कुल जगह न मिले, यही उस निराशा का कारण बनते आए हैं जिसके कारण बच्चे स्कूल से और अंग्रेजी से दूर हो जाते हैं। राजस्थान में भी यही होगा। हिन्दी एवं अंग्रेजी की पुस्तकों की पुरानी सारी समस्याओं को राजस्थान की पहली कक्षा की पुस्तक में बरकरार रखा गया है।

अंग्रेजी पुस्तकों की यह दुर्दशा 2016 में होना किसी को भी चौंकाता है क्योंकि पिछले दस सालों से हमारे पास राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 और उसके सहयोगी फोकस समूहों के पर्चों का विमर्श एवं ज्ञान है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और अंग्रेजी शिक्षण के फोकस समूह की अनुशंसाओं पर अमल करते हुए एनसीईआरटी ने विशेष तौर पर ग्रामीण बच्चों के लिए अंग्रेजी पुस्तकों की एक शृंखला तैयार की जिसका नाम है 'रेनड्राप्स'। रेनड्राप्स शृंखला की अंग्रेजी पुस्तकें 2011 से उपलब्ध हैं। रेनड्राप्स में कहानियों और कविताओं को शुरू से ही जगह दी गई है और हरेक पाठ में विचार, वाक्य और शब्दों के सार्थक संदर्भ में आने के बाद बच्चों का ध्यान सीमित रूप से अक्षरों पर लाया गया है। राजस्थान की पहली कक्षा की पुस्तक इस शृंखला से प्रभावित प्रतीत होती है। पाठ सरंचना वैसी ही है, लेकिन कहानियां देने में कोताही, बच्चों के लिए अनुपयुक्त काविताओं, बेगाने संदर्भ और अक्षर अभ्यास की भरमार ने राजस्थान की पुस्तक को अकादमिक रूप से हल्का कर दिया है और वह बाल-सुलभ नहीं रह गई है।

प्राथमिक स्तर की अन्य पाठ्यपुस्तकें

कक्षा तीसरी से पांचवीं की पुस्तकों में जिस पहलू पर सबसे पहले नजर जाती है, वह है अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ देकर शब्द सिखाने का प्रयास। नीचे कक्षावार हिन्दी शब्दों की सूची दी गई है जिनकी मदद से प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को अंग्रेजी तद्रूप सिखाने की कोशिश की गई हैः

तालिका 1 : प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तकों में दिए गए शब्दार्थ

कक्षा एवं उम्र	अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ
कक्षा 3 उम्र 7–8 साल	परिवेश, यातायात बत्ती, पराक्रम शक्ति, खुशमिजाज, कचरापात्र, आशीर्वाद, परिचित, समझदारी, प्रतिध्वनि, धरोहर, निर्माण क्रिया, प्राचीन, स्वर्ग, प्रवासी, अभ्यारण्य, निपुणता, आज्ञाकारिता, उपलक्ष्य, अनुयायी, शानदार, मध्य रात्रि, मंद पवन, वृक्ष, षडयंत्र, पत्रकार, क्रांतिकारी, यातना, गिरफ्तार
कक्षा 4 उम्र 8–9 साल	व्यावहारिक, संचित, संग्रहित, आक्रमण, भयभीत, अशिष्ट, अनुयायी, प्रदर्शनी, जीवन्त, प्रौढ़, पशुधन, प्राणी, प्रजातियां, आर्द्रता युक्त, कुंज, प्रवाह, विक्रेता, घोषणा, रवानगी, सहकर्मी, विमान विज्ञान, यंत्रमानव शास्त्र, विशेषज्ञ, अदृश्य, त्याग, नरसंहार, निर्दयतापूर्वक, प्रारंभ, व्यवहार, गणना, धरातल, तलहटी, शांतिप्रद, सावधानीपूर्वक, मनोहर, आयोजन, चर्चा, विचार विमर्श, पर्यावरण, जागरूकता, ग्रह, समृद्धिशाली, वैभवशाली, स्वदेश, मातृभूमि, अरुचिकर, स्नेहहीन, भावहीन, सर्वश्रेष्ठ, आत्मीयता, स्नेहशील
कक्षा 5 उम्र 9–10 साल	भयभीत, शांति (युद्ध के बाद वाली), जिज्ञासा, विस्तार, प्राथमिकता, शांतिपूर्वक, नष्ट, वादा, आरोप, प्रचुर, सुव्यवस्थित, अपहरण, अभिनीत करना, विस्फोटित, अव्यवस्थित, पूर्ण, धधकता, यात्री ,प्रभावित, शपथ, दुष्प्रभाव, भुखमरी, विचित्र, संग्रह, स्तंभ, समर्पित, भक्त, मित्रवत उपस्थिति, आंदोलन, घोषणा, आंदोलनकारी, संचालन, स्थापित, विरोध, अभियान, औपनिवेशिक, मूर्छित, प्रहार, अन्यायपूर्ण, धैर्यहीन, आध्यात्मिक, दयनीय

तालिका 1 में दिए गए शब्दों पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि ये केवल इसलिए कठिन नहीं हैं क्योंकि इनकी वर्तनी कठिन है या बच्चे के अनुभव जगत के दायरे से बाहर हैं। शब्दों की कठिनाई का असल आभास हमें पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत से होता है। प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में बच्चों की उम्र 5 से 10 साल होती है। इस उम्र में बच्चे अमूर्त अवधारणाओं की समझ नहीं बना सकते। यह क्षमता तो किशोरावस्था में आनी शूरू होती है। दरअसल अमूर्त क्षमताओं का विकास शुरू होने को किशोरावस्था का सबसे बड़ा सूचक माना जाता है (पियाजे एवं इनहैल्डर, 1958)। अमूर्त अवधारणाओं की समझ की क्षमता के बिना बच्चा भावहीन, स्नेहहीन, षडयंत्र जैसे शब्दों की मदद से अंग्रेजी का विचार कैसे जान सकता है? यह विचार इन पुस्तकों की समिति सदस्यों के मन में नहीं कौंधा। इन शब्दों के चयन पर समझ बनाने के लिए हमें स्कूली हिन्दी और जीवन जीने के लिए बोली जा रही कई तरह की हिन्दी के बीच चल रहे द्वंद्व को यहां याद करना होगा। अफसरी भाषा में राजस्थान एक हिंदी भाषी क्षेत्र माना जाता है, लेकिन बच्चों के घर में बोली जा रही भाषा स्कूल की औपचारिक हिन्दी से वस्तुतः भिन्न होती है।

उसको इस्तेमाल किए बिना अंग्रेजी सिखा पाना असंभव है। इस सूची से एक और बात हमारे संज्ञान में आती है कि सिर्फ विषय का ज्ञान और बच्चों को पढ़ाने का अनुभव एक अच्छी पुस्तक की रचना के लिए पर्याप्त नहीं हैं। पुस्तक समिति को भाषा शिक्षण के मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय मुद्दों की गहरी समझ होनी चाहिए।

कुमार (2001) के अनुसार, चाहे वह कविता हो, कहानी हो, लेख या एकांकी हो, हर रचना हिन्दी की पाठ्यपुस्तक के लिए चुनी ही इस आधार पर जाती है कि उसमें स्वीकृत बातें बोल देने के अवसर कक्षा में जुटाने की क्षमता कितनी है। जो बिंदु लेखक ने हिन्दी के संदर्भ में व्यक्त किया है, वह अंग्रेजी की पाठ्यपुस्तकों पर भी पूर्ण रूप से लागू होता है। दरअसल, यह सभी भारतीय भाषाओं की पुस्तकों पर लागू होता है। भाषा की पुस्तकों को बच्चों को उपदेश देने का मंच मान लिया जाता है और वयस्कों के सभी सारोकार पाठ के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। प्राथमिक स्तर की सभी पुस्तकों में यह मानसिकता जाहिर होती है। जिन विषयों को इस्तेमाल करके कविताओं, नाटकों, निबंधों और कहानियों को चुना या लिखा गया है, उनकी सूची तालिका 2 में कक्षावार दी गई है।

तालिका 2 : कविताओं, नाटकों, निबंधों और कहानियों के विषय

कक्षा	विषयों की श्रेणीवार सूची				
	उपदेशात्मक	साहित्य	राजस्थान की धरोहर एवं गौरव तथा देश की महिमा	सरकार की समस्याएं।	जानकारी
3	मन लगा कर काम करते रहना, वृद्ध लोगों की मदद करना, अच्छी आदतें, मां को निश्छल भाव से प्रेम करना (4)	पंचतंत्र की कहानी, (1)	चारभुजानाथ मंदिर, भरतपुर चिड़िया अभ्यारण्य, छत्रपति शिवाजी (3)	स्वच्छ भारत अभियान, लड़कियों की इज्जत करना, वृक्ष सरंक्षण, वातावरण, यातायात बत्ती (5)	
4	धन्यवाद करते हुए प्रार्थना, जानवरों के प्रति दया (2)	आम खा जाने वाला चतुर नौकर रामू, पहाड़ी के तल में बसा गांव, बदबूदार सांस वाला शेर (3)	राजस्थान के अपंग खिलाड़ी देवेन्द्र झाझरिया, राजस्थान की बहादुर जनजातीय लड़की, पुष्कर का ऊंट मेला, गोविन्द गुरू के नेतृत्व में मनगढ़ धाम, राजस्थान में हुआ जन जातीय लोगों का नरसंहार,मातृभूमि (5)	पानी बचाओ, रेलवे स्टेशन को साफ रखना, वायु प्रदूषण, पर्यावरण संरक्षण (4)	कल्पना चावला, राष्ट्रीय पक्षी मोर, नींबू पानी (3)
5	प्राणायाम के फायदे, स्कूल एक मंदिर, पढ़ाई न करने वाला बच्चा, बात करने के नुकसान (4)		दशहरा, चित्तौड़गढ़ का किला, जुगनू, गुरूभक्त लड़की (4)	सफाई का महत्व, तम्बाकू न खाना (2)	रंग (1)
6	मेहनत का फल, शब्दों का महत्व (2)		महाराणा प्रताप, राजस्थान की राजधानी जयपुर, राजस्थान के लोक नृत्य, मातृभूमि के लिए पन्ना धाय का बलिदान, आषाढ़ का मेला (5)	स्वास्थ्य एवं सफाई, स्मार्ट गांव, स्वच्छ भारत में बच्चों की भूमिका, आग लगने की आपदा, सड़क पर सुरक्षा, बैंक में खाता खोलना (6)	कम्प्यूटर, जानवरों के घर (2)
7	सपनों का स्कूल, मेरा परम मित्र, एक लड़के की कम्प्यूटर पर चूहे मारने का खेल खेलने की बुरी आदत, गरीबों के प्रति दया, हितोपदेश की कथा जिसमें राजा अपने लिए एक ईमानदार वारिस चुनता है (5)	एक विद्यार्थी और कैंटीन मालिक का वार्तालाप, मुस्कुराहट, टैगोर की कविता जिसमें भिखारी से मांगने भगवान आ जाते हैं (3)	1737 में बिशनोई लोगों द्वारा पेड़ काटने के विरोध में किया गया बलिदान, रणथंभोर का चीता पार्क बनाने वाले और राजस्थान के रहने वाले फतेह सिंह राठौर, राजस्थान के ऐतिहासिक जगहों की यात्रा और सांस्कृतिक धरोहर, प्राचीन भारतीय विज्ञान (4)	कचरे को कम करने की जरूरत, अपंग बच्चों का स्कूल आना, गुटका चबाने पर आधारित नरेंद्र मोदी द्वारा रेडियो पर की गई मन की बात (3)	
8	बच्चों द्वारा सर्कस के जानवरों पर किए गए अत्याचार, एक मां द्वारा कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय में पढ़ रही उसकी बेटी को नसीहतों भरा पत्र (2)	विवेकानंद की आत्मा की आजादी पर कविता, टैगोर की कविताः जहां गर्व से सिर उठे हों, टैगोर का नाटक कर्ल्यू टापू (3)	चित्तौड़ के ऐतिहासिक स्थल, राजस्थान में पैदा हुए चित्रकार सुदीप सिंह की गरीब परिवार में 16 भाई बहनों के साथ पलने और जयपुर जाने की कहानी, राजस्थान की बहादुर बेनाम औरत जिसने बहुत सारे अंग्रेज सैनिकों को जहर भरा खाना खिला के मार दिया और खुद भी मर गई, राजस्थान की कीर्ति, चाणक्य (5)	पैर से अपंग संगीता नामक लड़की की बहादुरी की कहानी, बैंक जाना, जल प्रदूषण एवं संरक्षण, पेडों का काटा जाना (3)	कम्प्यूटर (1)

एक कहानी में नौकर का नाम श्यामू है। नौकर के नाम के आखिरी अक्षर में बड़े 'ऊ' की मात्रा बडी गहरी द्योतक है। इस तरह के पाठों की जड़ में यही सोच होती है कि गरीब नौकर धूर्त होते हैं जो अपने भोले-भाले अमीर मालिक को बर्गला लेते हैं और धोखा देते हैं। राजस्थान की पुस्तक समिति इस बीमारी से बच नहीं पाई भले ही वह अंग्रेजी में लिख रही थी। गरीबों को समस्या की तरह देखना और उसी पर पाठ बनाकर सरकारी स्कूलों में आने वाले गरीब बच्चों को पढ़ाना न केवल बौद्धिक गरीबी को झलकाता है बल्कि इस बात से अनभिज्ञता को भी कि यह बच्चों की तौहीन है।

तालिका 2 की पांच श्रेणियों पर नजर डालते ही इन पुस्तकों की विषयवस्तु के चयन या लेखन पर हावी विचारधारा का एहसास हो जाता है। अंग्रेजी पढ़ाना तो दरअसल एक अकादमिक बहाना भर है। अंग्रेजी की पुस्तकों को एक जरिया मानते हुए जो बच्चों तक पहुंचाने की कोशिश की गई है, वह हैः राजस्थान की पर्यटन संबंधी जानकारी, सरकार की समस्याओं और हाल में चल रही परियोजनाओं का बखान एवं पुरानी सनक यानि उपदेश। पुस्तक के पन्ने पलटते समय बार-बार लगता रहता है कि ये अंग्रेजी भाषा की बच्चों की किताब न होकर पर्यटन, प्रौढ़ शिक्षा एवं सरकारी परियोजनाओं की जानकारी का पर्चा है जिसमें भाषाई और साहित्यिक लेख बीच-बीच में विराम लगाने के लिए डाल दिए गए हैं। टैगोर और विवेकानंद की कुल जमा तीन कृतियों को छोड़ दें तो पाठ न केवल हल्के स्तर के बल्कि भौंडे हैं। पाठ किसी भी विधा में रचा गया हो, उसकी भाषा और संरचना बेडौल है। पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि बस बता देने भर के लिए कुछ पंक्तियां जुटा दी गई हैं। उदाहरण के लिए, देवेन्द्र झाझरिया का 1981 में पैदा होना, 1989 में पैर खो देना और 2002 में कोरिया में एक स्वर्ण पदक जीतना, यह 21 साल की जीवन यात्रा पांच पंक्तियों में पूरी हो गई है। जब तक चौथी कक्षा के पाठक को इस बात का बोध हो पाए कि आठ साल की उम्र में देवेन्द्र का पैर कट गया, पाठ में उनके अंतर्राष्ट्रीय ईनामों की लंबी सूची खत्म हो चुकी होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि पैर कटने से देवेन्द्र के सामने कोई समस्या नहीं आई, न जिन्दगी में और न ही खिलाड़ी बनने में। साहित्यिक भाषा का गुण होता है कि वह छोटे से छोटे अनुभव की गहराइयों को इस तरह प्रस्तुत करती है कि बाल पाठक भी देवेन्द्र के मर्म को महसूस कर ले। इस कसौटी पर पहली से आठवीं तक की अंग्रेजी की सभी पुस्तकें निराशा पैदा करती हैं।

राजस्थान के एतिहासिक स्थलों के पाठ की विषयवस्तु सरकारी प्रचारों से भी ज्यादा भौंडी और बेतुकी है। इससे तो बेहतर होता कि पर्यटन विभाग एवं पर्यटन का काम कर रही निजी कंपनियों द्वारा विकसित पठन सामग्री को पाठ के रूप में इस्तेमाल कर लेते। उस सामग्री को पढ़कर फिर भी राजस्थान की सुंदरता और आकर्षण महसूस हो जाता। मौजूदा पाठों की नीरसता और जिंदगी से जुदा भाषा तो राजस्थान के आकर्षण पर पानी डाल देती हैं। जिन पाठों में सरकारी समस्याओं का जिक्र है, उनमें सरकारी अधीरता भी है कि जल्दी से सब ठीक हो जाए। भले ही हम खास काम करें न करें, परिस्थितियां और लोग बदल जाएं। एक पाठ में 15-20 पंक्तियां पढ़ते ही पात्र शपथ ले लेते हैं कि वे तंबाकू का सेवन कभी नहीं करेंगे। सन् 1737 में बिशनोई महिला ने पेड़ों को कटने से बचाने के लिए अपने हाथ-पैर कटवा दिए थे। इस वाक्य पर कक्षा सात की पुस्तक में दिए गए पाठ में लेखकों ने एक भी वाक्य इस पर खर्च नहीं किया है कि जब उनके हाथ-पैर कट गए तो काटने वाले सैनिक को कैसा लगा और उस महिला का क्या हुआ। राष्ट्रवादी विमर्श में डूबे लेखक भूल गए कि जब तक उसके दर्द को शब्दों में प्रस्तुत नहीं करेंगे तब तक बच्चों को उसके बलिदान का एहसास ही नहीं होगा। हरेक पुस्तक का हेरक पाठ भागता हुआ महसूस होता है जिसमें थोडा ठहरकर बच्चों से इस्तेमाल संदर्भ के सहारे अंग्रेजी में विमर्श की संभावना एवं गुंजाइश है ही नहीं।

अंग्रेजी शासन से उपजा भारत के गरीबों के लिए एक अपमानजनक घिसा-पिटा नजरिया अक्सर पाठ्यपुस्तकों में देखने को मिलता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 ने इस मुद्दे पर गहन चर्चा प्रस्तुत की थी और उसके तहत विकसित की गई पुस्तकों में इस बात का विशेष खयाल रखा गया था। राजस्थान की पुस्तकों में कचरा संबंधी पाठ तो उस नजरिए से उपजे दिखाई देते ही हैं, कई अन्य साक्ष्य भी मिलते हैं। जैसे कि, शिक्षक का नाम - मिस्टर शर्मा है और गरीब माता-पिता का नाम मंगू, सुगन और जानकी लाल है। एक कहानी में नौकर का नाम श्यामू है। नौकर के नाम के आखिरी अक्षर में बड़े 'ऊ' की मात्रा बडी गहरी द्योतक है। इस तरह के पाठों की जड़ में यही सोच होती है कि गरीब नौकर धूर्त होते हैं जो अपने भोले-भाले अमीर मालिक को बर्गला लेते हैं और धोखा देते हैं। राजस्थान

की पुस्तक समिति इस बीमारी से बच नहीं पाई भले ही वह अंग्रेजी में लिख रही थी। गरीबों को समस्या की तरह देखना और उसी पर पाठ बनाकर सरकारी स्कूलों में आने वाले गरीब बच्चों को पढ़ाना न केवल बौद्धिक गरीबी को झलकाता है बल्कि इस बात से अनभिज्ञता को भी कि यह बच्चों की तौहीन है। पिछले दो दशकों में शैक्षिक सिद्धांत के विषय में जितने भी समाजशास्त्रीय सरोकार पहचाने गए हैं, उनसे अंग्रेजी पुस्तक समितियों के सदस्य कोसों दूरी बनाए प्रतीत होते हैं।

हरेक पुस्तक के ढांचे को देखें तो एक न्यूरौटिक संरचना दिखाई देती है। एक पाठ राजस्थान के वैभव पर आता है तो अगला ही पाठ तंबाकू सेवन के दुष्प्रभावों या कचरे पर आ जाता है। एक पाठ अपंग बच्चों के साहस पर आता है तो दूसरा प्राचीन भारत में मौजूद विज्ञान की समझ पर, जिसकी विषयवस्तु दिल्ली के अक्षरधाम मंदिर में इसी विषय पर दिखाई जाने वाली चल-प्रदर्शनी के कथानक से मिलती-जुलती है। साहित्य का मर्म होता है शब्दों की मदद से परिचित और अपरिचित अनुभव में गहराई लाना, सोचने और विश्लेषण के लिए नजरिए देना, जिन्दगी के मामूली प्रसंगों के लिए भी उत्साह एवं जोश भर देना। राजस्थान की अंग्रेजी पुस्तकों में ऐसा कुछ भी नहीं है। वे नीरस, उबाऊ एवं अनाकर्षक हैं। ये पुस्तकें अंग्रेजी सिखाने में विफल और बच्चों को आज की दुनिया की महत्वपूर्ण भाषा से दूर रखने में अत्यंत कामयाब रहेंगीं। ◆

संदर्भ

1. एनसीईआरटी, क; 2006 पोजीशन पेपर ऑफ द नेशनल फोकस ग्रुप ऑन टीचिंग ऑफ इंग्लिश। एनसीईआरटीः दिल्ली
2. एनसीईआरटी, ख 2006; राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, एनसीईआरटी, दिल्ली
3. कुमार, कृष्ण, 1996, बच्चे की भाषा और अध्यापक। नेशनल बुक ट्रस्टः दिल्ली
4. कुमार, कृष्ण, 2001; स्कूल की हिन्दी। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
5. पियाजे, जे एवं इनहैल्डर, बी, 1958 द ग्रोथ आफ लॅजिक फ्राम चाइल्डहुड टू अडोलोसैंस।बेसिक बुक्सः न्यूयार्क

लेखिका परिचय : प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की कई परियोजनाओं में सक्रिय भूमिका निभाई है। लड़कियों की अस्मिता के संदर्भ में धर्म और लिंग भाव के संबंधों पर शोध किया है। एन.सी.ई.आर.टी. से प्रकाशित क्रमिक पुस्तकमाला 'बरखा' की समन्वयक रही हैं। वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में पढ़ाती हैं।

R.N.I.No.RAJHIN/1999/359 विमर्श

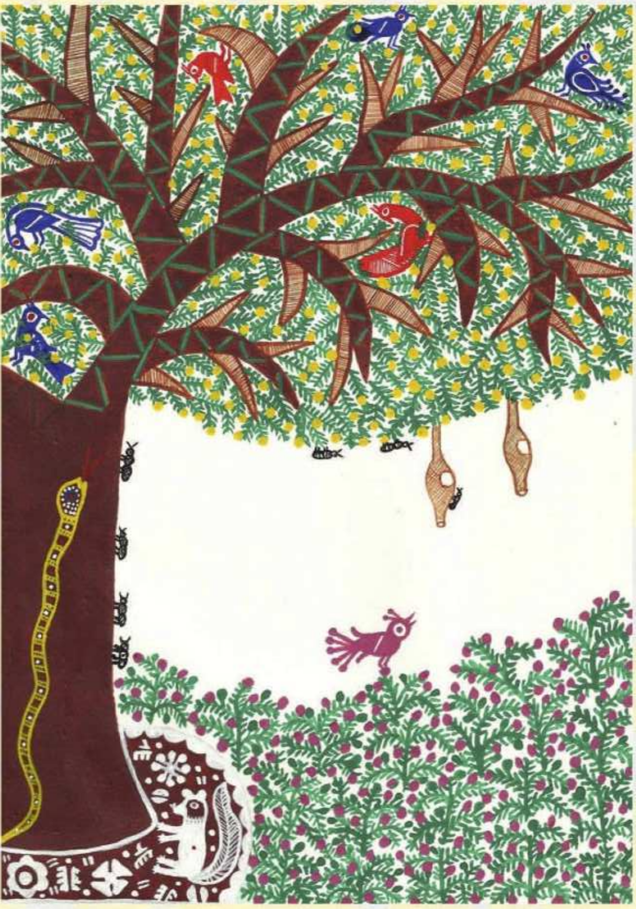

इस अंक को आप सुनीता के चित्रों से सजा देख रहे हैं। सुनीता ने बचपन से अपनी मां को घर के कच्चे आंगन और कच्ची दीवारों पर मांडने बनाते देखा। थोड़ी बड़ी हुई तो खुद भी साथ बनाने लगीं। तब यह पता भी न था कि यह मांडने कभी उनकी कला पहचान से जुड़ जाएंगे। आज सुनीता देश की उभरती कलाकार हैं। उनके चित्रों से सजी कई किताबें तारा पब्लिकेशन, रूम टू रीड, जैसे प्रकाशनों से आ चुकी हैं। इनमें तारा पब्लिकेशन से छपी 'गबल यू अप' ने उनकी पहचान को विस्तार दिया। हम उनके चित्र 'एकलव्य' द्वारा प्रकाशित की जाने वाली पत्रिका चकमक में भी कई बार देख चुके हैं। सुनीता ने अपनी मां से अर्जित इस कला को अपनी मेहनत से मांजा है। आज वे बड़े-बड़े कैनवास पर एक सिद्धहस्त कलाकार के तौर पर अपनी कूंची चलाती हैं। सुनीता के चित्रों में गांव का परिवेश, मवेशी, पंछी, खेत, खलिहान, फसल, पेड़, रात, चांदनी, बारिश, मछलियां, जंगल आदि अपनी सघनता में मौजूद रहते हैं। स्वतंत्र विषयों पर चित्र बनाने के साथ-साथ वे अपने अंचल (राजस्थान के दौसा व करौली जिलों के दरमियान मौजूद माड़ अंचल) की लोक कथाओं की थीम पर भी चित्र श्रृंखला बनाती रही हैं। वर्तमान में सुनीता एकलव्य द्वारा संचालित अकादमी 'रियाज' से इलस्ट्रेशन व डिजाइनिंग का कोर्स कर रही हैं। आने वाले समय में हम उनके चित्रों से सजी कई किताबें देखने वाले हैं। सुनीता के पास आज इतने चित्र हैं कि देश की किसी भी कला दीर्घा में उनकी एकल प्रदर्शनी लगाई जा सकती है। उम्मीद है हम जल्द उनके चित्रों को एक बड़े फलक पर प्रदर्शित होता देखेंगे।

टाटा एजुकेशन ट्रस्ट, मुम्बई के सहयोग से प्रकाशित

दिगन्तर शिक्षा एवं खेलकूद समिति, जयपुर के लिए सुश्री रीना दास द्वारा भालोटिया प्रिंटर्स, 1/398, पारीक कॉलेज रोड, जयपुर-302006 से मुद्रित एवं दिगन्तर, खो नागोरियान रोड, जगतपुरा, जयपुर-302017 से प्रकाशित